प्रकाशक—
शेखावाटी प्रकाशन मंडल,
झुंझुनू
जयपुर राज्य (राजपूताना)

मुद्रक—
नव संदेश प्रिंटिंग वर्क्स
लोहामन्डी, आगरा ।

स्मृति-संधान

मानव-जगत् को जिस दिन ज्ञान का वरदान मिला, सुख-दुःख की पहिचान की शक्ति प्राप्त हुई, अपने हृदय की भावनाओं के परिवर्तन की प्रवृत्ति भी जग पड़ी उसमें,

ज्ञान का वरदान,

अनुभव की प्रेरणा

वर्तमान के कंठों से गूँजी अतीत की ध्वनि "वह दिन भी कितने सुखकर थे, वह दिन भी कितने दुःखकर थे, अब मैं हूँ मेरी स्मृतिएं हैं—खंडहर महल-महल खंडहर थे।" कहानी का प्रथम प्रथम आस्वादन किया हृदय ने इस तरह सुनने की और कहने की लालसा दूसरे 'स्टेज' की चीज है।

फिर तो मानव हृदय पुकार उठा—
समाज की बातें कहो
राजनीति की चर्चा चलाओ
और दर्शन की गुत्थियाँ सुलझाओ,
और प्रेम-स्नेह को क्यों छोड़ रहे,
और,
और सत्य कहो, शिव कहो,
सुन्दर कहो
नहीं, यथार्थ भर रहने दो।

इन विविधि रूपों में—कहानी केवल कहानी रही—माँ बेटे के लिए कहानी रखती है, पति-पत्नी आपस में एक दूसरे के लिए कहानी रखते हैं, जीवन का निरा 'सेंटिमेंटस' भी जीवन के लिए कहानी रखता है। छोड़िए भी सब को, यही बहुत है,

"मानव जीवन एक कहानी।"

तो मैं कह दूं, प्रस्तुत पुस्तक "कैदी भाई" की अधिकतर कहानिएँ सत्याग्रह के समय जेल में लिखी गई हैं। यह उन कैदी भाइयों का स्मृति-चिन्ह है, जिन्होंने मस्ती अपनाई तो मानवता पर मर मिटने की मस्ती अपनाई है। जिनका, विलास का जीवन सदा के लिए नष्ट हो गया है, जिन्होंने कष्ट और त्याग को अपनाया: है। क्रान्ति के उपासना-मन्दिर में ख्याति से अपने को दूर रखा—एकदम दूर—जिन्हें आज की दुनिया नहीं जानती, न-ही आने वाली पीढ़ी उनकी याद करेगी। वह नाम के भूखे नहीं हैं; वरन् काम किए चलने और चुपचाप किए चलने में उन्होंने अपना 'अप्रिशियेशन' पाया है।

और, जो कुछ इन कहानियों में आए हैं, वह निश्चित रूप से उन भावुक देश-भक्त युवकों की आत्माओं के प्रतिबिंब हैं, उनके हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं। चार दिवारियों में बन्द कल्पना, और सत्ता के बन्धन में बन्धे प्राणों की मुक्त उड़ान—सफल उड़ान हो सकती है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता. प्रत्युत यह कहना अवश्य निर्विवाद है कि इन कल्पनाओं को सफली भूत करने में, योग देने के नाम पर समाज के सहृदय और पथ-प्रदर्शक जन्तुओं ने उन्हें कांटों में घसीटा जरूर है।

राष्ट्र के—कोने-कोने में, देश भक्त युवक अपना सर्वस्व समर्पण कर देश सेवा करना चाहते हैं, पर उनसे तीव्र बुद्धि वाले, नहीं, कहिए, राजनीतिक व्यापारी उन्हें गलत रास्ते पर चला उनका जीवन सदा के लिए नष्ट कर डालते हैं। राजनीतिक व्यापारियों को तो चाहिए केवल अपनी दूकानदारी जमा कर देश-सेवा के नाम पर धन, और ऐश-आराम का जीवन। उनका एक-मात्र लक्ष्य रहता है—देश की उन्नति

अवनति की बाग—डोर पूँजीपतियों के हाथ में सौंप देना। और इसमें वह सफल भी रहते हैं, कारण, धनिकों की सहायता की बदौलत समाचार पत्र और दूसरे साधनों का उपयोग उनके लिए सुलभ रहता है, धनकी कमी तो रहती नहीं—उनके तैयार किए हुए गुर्गे उनके इशारे पर किसी भी देश सेवक के कार्य को नष्ट कर देने को तत्पर रहते हैं। वास्तव में वैसे लोग राष्ट्र की स्वतंत्रता-प्राप्ति में उतने ही बाधक हैं, जितनी कि दूसरी नृशंस शक्तियां। और देश के किसी भी कोने में वैसे हृदयों की कमी नहीं।

मुझे कहने दीजिये—"कैदी भाई" की मूल प्रेरणा में संसार की इन्हीं विषम भावनाओं का हाथ है। इन कहानियों में एक नवीन रस, जिसका शायद अभी नाम करण नहीं हुआ है—नवरसों से पृथक आप कुछ और ही पाएंगे: इसमें आप को मिलेगा, उन आत्माओं की चीत्कार जिनकी दुर्बल काया को वज्र मुष्टियों ने पीस डाला है, जिसके प्राणों में घृणा और छल की होलिका पापियों ने जला रखी है। देश-दशा में परिवर्तन, आयेगा—अवश्य: आज न कल ऐसा होना ही है। राष्ट्र स्वतंत्र होगा, उसका श्रेय चाहे जिस किसी को मिले—अंतर का सत्य पुकारता रहेगा, इस परिवर्तन का कारण है उन अल्पमत युवकों का बलिदान जिन्हें संसार नहीं जानता।

हाँ तो इन कहानियों के लिए मैं फिर कहूँगा कि यदि कहीं सत्यं शिवं और सुन्दरम् का सामञ्जस्य नहीं दिखाई पड़े केवल कटु सत्य सिर उभार रहा हो, तो आश्चर्य की बात नहीं, कलात्मक दृष्टि-कोण से इनकी रचना नहीं हुई है, यह है, मां भारती के मंदिर में 'यथार्थ वेदना' की धृष्ट भेंट।

मेरे कुछ साहित्यिक मित्रों ने इन कहानियों में कला का

प्रस्फुटन पाया है, इनकी सराहना की है, यह हुई उनकी बात मगर प्रगतिशील समाज इन्हें किस रूप में अपनाता है यह बात भविष्य ही बतलावेगा।

जयपुर की राजनीतिक जागृति और जयपुर सत्याग्रह से जो हृदय परिचित है, वह तो इन कहानियों के रचियताओं को जानते हैं और उनके जीवन को भी—इन बातों से अनभिज्ञ भाइयों के लिए—"कैदी भाई" के रचियताओं का—जो स्वयं कभी के कैदी भाई हैं—दो चार शब्दों में परिचय दे देना अयुक्ति कर नहीं होगा।

श्री० चिरंजीलाल जी अग्रवाल एम० ए० एल० एल० बी०

जयपुर राज्य के प्रथम वकील केरूप में आपसे लोग परिचित हैं। मैं तो इन्हें एक बहुत ही उत्साही युवक के रूप में पाता हूँ। प्रजा मंडल और जयपुर सत्याग्रह आदि में भाग लेने के अतिरिक्त आप पुराने कॉंग्रेस सेवी हैं। 'आशा' कहानी आपकी है, और है आशा के अनुरूप ही।

श्री० वेंकटेश जी पारीख

सीकर राज्य के नेता नहीं अन्यतम कार्य कर्त्ता के रूप में आपको लोग जानते हैं, और हैं सेवासदन लक्ष्मण गढ़ के प्रेसिडेंट। सीकर राज्य आन्दोलन में आपकी दृढ़ता प्रशंसनीय रही है। "कायर कौन ?" "प्रेम" और "परिवर्तन" कृतियां आप की ही लिखी हैं।

पं० हरिप्रसाद जी शर्मा शास्त्री

कर्म क्षेत्र-संस्था के उत्साही कार्य कर्त्ता हैं आप में देश सेवा की लगन है। 'द्रोही', 'मोती और गुलनार' एवं 'दयाल' कृतिएँ आपके मस्तिष्क की उपज है।

प० मदनमोहन शर्मा ए० म० ए० एल०-एल० बी०

विद्यार्थी जीवन से ही आपने कांग्रेस में भाग लेना प्रारंभ किया, प्रजा मंडल के संस्थापकों में से आप एक है। सत्याग्रह के समय म्युनिसिपल मेम्बरी से त्याग पत्र देना आपकी उच्च भावना का परिचायक है। "शांति का अंत" और "धोखे का जवाब" कहानी आपके जीवन की एक झलक है और सच्ची झलक।

श्री० फूलचन्द जी वर्मा,

आपके लिए यही कहना पर्याप्त होगा कि ठीक परीक्षा के समय देश की पुकार पर दौड़ कर आपने अपने हृदय का निर्भ्रांत परिचय दिया है। 'मेरी कहानी' में आपकी भावनाओं से विशेष परिचय प्राप्त कीजिए।

शेष में, इतना कहना और शेष रह जाता है कि पुस्तक में आई भावनाओं को अपना कर उन्हें मैंने अपनी भाषा के रंग में इतना रंग दिया है कि सहृदय पाठक उसे एक ही लेखक की कृति समझ बैठे। मगर बात ऐसी नहीं है। और यह भी सम्भव है कि पुस्तक कुछ मन चले पाठकों को नहीं भी रुचे, ऐसी अवस्था में मुझे इसकी कुछ पर्वाह नहीं होगी। कारण इसकी रचना हुई है, केवल युवकों में उनकी सुप्त बलिदान और संगठन भावना को जगाने के लिए। इस लक्ष्य को लेकर सफल हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

समय और चित्त वृत्ति ने साथ दिया तो जो कहानियां इनमें देनी रह गई हैं, उन्हें भी 'कारागार' की काया में, मैं प्रकाश में लाने का प्रयत्न करूंगा।

जयपुर
२० मई १९४०

सी० एच० गौड़

विषय-सूची

सी० एच० गौड़

कैदी भाई

कैदी भाई

कारावास में पड़ा हुआ भूख हड़ताली शंकर अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। उस समय उसका हृदय भाव-शून्य था। वह शक्ति का उपासक इस महत्वाकांक्षा को लेकर, कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने भले-बुरे का स्वयं निर्णय कर सके, देश सेवा के कठिन मार्ग की ओर अग्रसर हुआ था। उसका दृढ़ विश्वास था कि जनता को स्वनिर्माण की स्थिति पर पहुंचाने के लिये शक्ति की आवश्यकता है। उस समय उसके कानों में भनक पड़ रही थी कि यदि एक शंकर मर जायगा तो सौ शंकर उत्पन्न होंगे और अधिकारियों से एक के बदले में हजार शंकर

लिये जायेंगे। वह इन शब्दों की गहराई और उनके भीतरी भाव को खूब अच्छी तरह समझता था। उस समय उसके हृदय में भूत भविष्य की कोई बात न थी। उसकी आत्मा में अद्भुत शान्ति थी।

एकाएक उसके कानों में भनक पड़ी, "पागल आगया", "पागल आगया"। उसकी यही अन्तिम इच्छा हुई कि एक बार उस पागल को देखूं। वह यह जानना चाहता था कि जिसे लोग पागल कहते हैं, क्योंकर ऐसे आदमी ने सत्याग्रह में भाग लिया? इतना ही नहीं; परन्तु जब कुछ भाइयों ने कहा कि हम पागल के साथ नहीं रह सकते, तो जेल के अधिकारियों ने उससे कहा कि माफ़ी के फार्म पर हस्ताक्षर करदो और अपने घर चले जावो, नहीं तो हम सदा के लिये तुम्हें पागल ख़ाने में बन्द कर देंगे; परन्तु उनकी यह बात सुनकर वह पागल हंसा और बोला कि लेचलो पागलखाने।

यह थी मानवता की परीक्षा। जो भाई एक उद्देश को लेकर जेल आये थे, उनमें से कुछ एक अपने ही भाई को सदा के लिये नष्ट करने में जरा भी न हिचकिचाये। यदि वे सदा के लिये उसे पागलखाने में रखवाने में सफल हो भी जाते तो क्या वे उसकी सुन्दर आत्मा को नष्ट कर सकते थे !!

भूख हड़ताल के कारण जेल के अधिकारियों पर राजनैतिक कैदियों का काफी प्रभाव था। वे यह नहीं चाहते थे कि किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा हो जाय। इसलिये जो कुछ बात उनके

बश की होती वे सदा मानने को तैयार रहते थे। कुछ देशभक्त भावुक भाइयों के जोर देने पर, कि प्रेमरतन चाहे पागल हो या और कुछ, है तो हमारा भाई, इसलिये पागलखाने में वह रह नहीं सकता, वह फिर जेलखाने में बुला लिया गया।

शंकर इसी पागल प्रेमरतन को देखना चाहता था। प्रेमरतन शंकर के बगल वाले कमरे में ही रखा गया था। कैदी भाइयों की मांग के इतनी तत्परता से पूरी होने का कारण यह था कि हट्टे-कट्टे प्रेमरतन के दाहिने हाथ को न जाने पागलखाने में कौन से जहरीले कीड़े ने काटखाया था कि उसका सारा हाथ सड़कर सूज गया था। पागलखाने के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि एक राजनैतिक पागल का हाथ पागलखाने में काटा जाय, सो उन्होंने चटपट उसे वापिस भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया।

प्रेमरतन को देखने की जब शंकरने इच्छा प्रगट की तो उसके मित्रों ने कहा कि तुम्हारी हालत ऐसी नहीं कि तुम्हें उसके पास ले जाया जाय; प्रेमरतन को ही तुम्हारे पास ले आते हैं। शंकर के जोर देने पर कि उसे प्रेमरतन के कमरे में ही ले जाया जाय, उसके मित्र बड़ी सावधानी से उसे वहां ले गये।

पीड़ा के कारण प्रेमरतन हिलडुल नहीं सकता था। उसका सारा शरीर नीला पड़ गया था। वह अपनी असहनीय पीड़ा को दबाये एक टक छत की ओर देख रहा था। शंकर के बारे में वह बहुत कुछ सुन चुका था। जब उसके कानों में ये शब्द पड़े

कि शंकर तुम्हें देखने आया है, वह अपना दुःख भूलकर एक-दम उठ बैठा और बोला, "वन्दे मातरम्।" उसकी आँखों से दो बूंद आँसुओं की टपक पड़ी; वे आँसू दुःख के नहीं थे; वरन प्रेम के।

जब शंकर ने प्रेमरतन की ओर देखा तो वह सहम गया। उसके नेत्रों में उसने वह आभा देखी जो अपने जीवन में कहीं कभी न देख पाया था। उसने संसार के कई महापुरुष देखे थे; परन्तु केवल आलोचनात्मक दृष्टि से। शंकर के हृदय में कभी उनके लिये अनन्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई थी; परन्तु प्रेम को देखकर वह अपने आपको भूल गया। उसने सोचा संभव है यह उसी प्रकार का पागल हो जिसकी परिभाषा विद्वानों ने की है कि किसी एक लक्ष्य को लेकर अपने जीवन का बलिदान कर देना पागलपन है। प्रेम से मिलने के लिये शंकर ने हाथ बढ़ाया परन्तु वह उस ही क्षण बेहोश हो गया।

\+ × × ×

जिस उद्देश्य को लेकर भूख हड़ताल हुई थी उसके प्राप्त हो जाने के उपरान्त शंकर के पेट में कुछ-कुछ अन्न जाने लगा और वह चलने फिरने लायक हो गया। उस समय उसे केवल एक ही बात की चिन्ता थी कि किसी भाँति प्रेम के जीवन की वह कुछ बातें जान सके; इसलिये वह उसके पास घन्टों बैठा रहता।

शंकर केवल इतना ही जान सका कि प्रेमरतन एक प्रतिष्ठित घराने का युवक है। उसके पिता और बड़े भाई राज्य में ऊँचे

पदाधिकारी हैं। उसका मंझलाभाई किसान कार्यकर्त्ता है। उसका बचपन बड़े ही लाड़ प्यार में बीता; परन्तु जैसे ही उसमें कुछ समझने की शक्ति आई, उसकी प्रवृत्तियाँ दूसरी ओर बह निकली। पढ़ने लिखने में वह पूरा बौदम निकला। घरवालों की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उन्हें आशा थी कि उनका सबसे छोटा और सुन्दर प्यारा बालक प्रतिभाशाली होगा।

प्रेमरतन की प्रतिभा को उसके कुटुम्बी समझ न सके। उसमें तो वह महान प्रतिभा थी कि जिसका पाना एक असम्भव-सी बात है। बचपन से ही उससे पराये दुःख न देखे जाते। उसके लिये अपनी कोई वस्तु ही न थी। गरीब और दुःखियों की सहायता के लिये वह अपना सर्वस्व देने को तैयार था। बचपन में ही एक अछूत बुढ़िया को गांव के बाहर ठंड में मरती देख अपनी नई कम्बल उठाकर उसे वह दे आया। उसके ऐसे ही कई कृत्यों के कारण घरके लोग उसे पागल समझ बैठे और उसका घर में घुसना बन्द कर दिया। यदि वे उसकी प्रवृत्तियों को ठीक ढंग से उन्नत कर और उसे शिक्षित कर अपने से परे न रखते तो उन्हें पता चलता कि कैसी महान आत्मा उनके पास है। उन्होंने तो उसे पागल बनाकर घर से बाहर निकाल दिया।

प्रेमरतन का समय गरीबों की झोंपड़ियों में, निःसहाय रोगियों की खाटों के पास, और दीन दुःखियों की सहायता में बीतता था। आस-पास के गाँवों के दीन दुःखी जानते थे उसके

असली पागलपन को !! भरपेट अन्न न मिलने और कई प्रकार की सड़ी-गली वस्तुओं को खाने के कारण उसके पेट में पीड़ा रहने लगी और मिट्टी खाने पर उसे कुछ शान्ति मिलती। वह बहुत कम बोलता और इसी चिन्ता में मग्न रहता कि किस तरह दूसरों के दुःखों को दूर करूँ। इन सब बातों से उसके पागलपन का खूब प्रचार हो गया।

× × × ×

जगह-जगह सत्याग्रह छिड़ा हुआ था। सत्याग्रह के संचालकों को सत्याग्रहियों की परमावश्यकता थी। कारण कि उन्हें अपना आन्दोलन चालू रखना था। कुछ कार्यकर्ता प्रेमरतन के पास भी आ पहुंचे। वे उसकी सेवा-भावना की प्रवृतियों को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने उसके हृदय में यह बात भली भाँति बैठा दी कि यदि वह अपने आपको देश सेवा में समर्पण कर देगा तो गरीबों के दुःख सदा के लिये दूर हो जाँयगे। प्रेमरतन सत्याग्रह के लिये तैयार हो गया।

जब प्रेमरतन के पिता और दोनों भाइयों को उसके निश्चय का पता लगा तो वे घबराये। मंझला भाई समझाने आया। वह कहने लगा "प्रेम मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि तुममें समझने की शक्ति हमसे कहीं बहुत ऊंची है। यह हमारा ही दोष है कि जानबूझ कर हमने तुम्हारे पागलपने का झूठा प्रचार कर रखा है; परन्तु हम करें भी क्या ? समाज भी तो कोई वस्तु है। तुम्हारा अछूतों में समय बिताना, उनके हाथ का खाना, मिट्टी

खाना, घरकी वस्तुयें दूसरों को दे आना आदि बातों ने हमें तुम्हारे पागल होने का प्रचार करने को बाध्य किया। हम तुम से क्षमा चाहते हैं प्रेम। तुम चाहोगे वही होगा; परन्तु जेलखाने न जावो।

"देश-सेवा की आड़ में अपना उल्लू सीधा करने वाले इन बनावटी देश सेवकों को हम अच्छी तरह जानते हैं। अभी तक ये ही कार्यकर्ता तुम्हें पागल कहकर कोसों दूर भगाया करते थे। आजतक उन्होंने कभी तुमसे बात भी की थी? अब उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है।

मैं किसानों में कार्य करता हूँ और वास्तविकता को अच्छी तरह जानता हूँ। उनका किसानों की भलाई का दम भरना उतना ही सच है जितना कि किसी व्यक्ति द्वारा हिमालय का प्रशान्त महासागर में फेंका जाना। अभी सत्याग्रह प्रारम्भ होने के पहिले जब प्रधान जी का लिखित वक्तव्य निकलने वाला था तब किसानों के प्रतिनिधियों ने प्रार्थना की, कि किसानों के लिये भी एक दो वाक्य अपने भाषण में रख दीजिये; परन्तु उन्होंने शुद्ध नकारात्मक उत्तर दिया। पूंजीपति जो अपने लिये सर्वस्व एकत्रित करना चाहता है वह किसानों की कितनी भलाई कर सकता है?

"इन लोगों को तो अपनी राजनैतिक दूकानदारी जमाकर आवश्यकता है नाम और धन कमाने की। सत्याग्रह प्रारम्भ होने के पहिले इन्होंने अपने पत्रों में विज्ञापनबाजी करदी कि

हजारों की संख्या में हमारे पास स्वयंसेवक है, जो जेलों को भर देंगे।

यदि अधिकारी इन लोगों का कहना न मानेंगे तो सारे भारत में उथल-पुथल मच जायगी, इसी आशय का लेख एक असफल राजनैतिक जो अपने को दूसरा बुद्ध समझ बैठा है उसके द्वारा निकलवा दिया।

"इतना करने पर भी किसानों के सिवाय इन्हें पाँच दस स्वयंसेवक मिलना भी कठिन होगया है। कुछ भावुक विद्यार्थी और भुलावे में डाले हुए देशभक्त भी इन लोगों के हाथ लग गये हैं। अब इन्होंने दूसरी चाल खेली है। हिलमिल नीति के देश सेवा की भावना वाले लोगों को, जो कि अपनी घरू विपत्तियों के कारण जेल जाने से हिचकिचाते हैं, यह कहकर कि पाँच-दस-रुपया महीना निर्वाह के लिये उनके घर पर भेज दिया जायगा और पीछे से वे उनके घर की देख रेख करते रहेंगे, जेल जाने के लिये उत्साहित कर रहे हैं। उन्हें जेल भिजवाने के उपरान्त कौन तो रुपया भेजता है और कौन देख-रेख करता है? एक युवक तो जेल में बैठा हुआ है और उसका वृद्ध रोगी पिता मामूली चिकित्साभाव के कारण अन्धा हो गया है। उन्हें तो चाहे जिस तरह भी हो अपना नम्बर बढ़ाने से मतलब!! इधर प्रधान जी के पैर की एक नस से दूसरी नस में कुछ दर्द अधिक हो गया तो सैकड़ों रुपये खर्च हो गये कलकत्ते और बम्बई से टेलीफोन खटके और पचासों आदमियों ने देश के इस कोने से

उस कौने तक दौड़-धूप कर न जाने कितने रुपये खर्च कर दिये।"

"किसानों की ये क्या भलाई कर सकते हैं ? इनमें से कितने नाम धारियों ने किसानों की असली परिस्थिति का अध्ययन किया है। इस समय तो ये देश सेवा की भावुक शक्तियों को नष्ट कर फेडरल एसेम्बली में पहुंचना चाहते हैं। इसी लक्ष्य को लेकर ये पूंजीपति व्यापारी अपनी दूकानदारी जमाकर एक दूसरे को धोखा देने के प्रयत्न में हैं। देखें ये कहां तक सफलीभूत होते हैं ? जनता की भलाई से इन्हें कोई मतलब नहीं। भाई प्रेम, इनके धोखे में मत आवो।"

प्रेमरतन के हृदय में तो यह बात बैठ गई थी कि सम्भव है किसानों को कुछ लाभ हो, सो वह जेलखाने पहुंच गया।

× × × × ×

कुछ दिनों उपरान्त प्रेमरतन के दूसरे हाथ की उंगलियों में जो घाव था, वह बढ़ने लगा और दूसरा हाथ भी सड़ने लगा। जेल के अधिकारी यह कह कर कि हम इसे अस्पताल लेजा रहे हैं, सदर फाटक की ओर उसे लेजाने लगे। कुछ को छोड़कर सब अपने-अपने कार्य में मस्त थे। प्रेमरतन के बदले यदि किसी नामधारी की विदाई होती तो सारी जेल में हलचल मच जाती।

सदर फाटक की खिड़की के पास खड़ा हुआ प्रेमरतन पुकार

रहा था, "सब भाइयों से विदा। सबको वन्देमातरम।"

दूर खड़ा हुआ शङ्कर विश्व बन्धुत्व की उस महान प्रतिमा को देखकर अपने आपको न रोक सका। वह यह कहता हुआ कि ठहरो कैदी भाई, मैं तुमसे अन्तिम बार मिल लूं, प्रेमरतन की ओर दौड़ा; परन्तु कमजोरी के कारण राह में ही चक्कर खाकर गिर पड़ा और मुंह से खून की धार वह निकली।
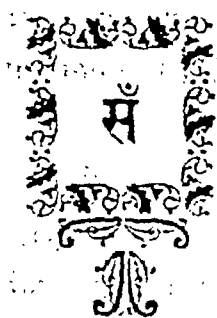
श्रीमती मलोनी

सँध्या समय एक अधेड़सी रमणी जिसका नाम श्रीमती मलोनी है कॉर्क बन्दरगाह के एक विशाल भवन के कमरे में टहल रही है। उसका मस्तक ऊंचा उठा हुआ है और उसकी आँखों मे चिनगारियाँ निकल रही हैं। उसके नथुने फूले हुए हैं और उनसे वह गर्म साँस छोड़ रही है। मुंह की सारी नीली नसें इस भांति उभर आई हैं जैसे कि वे फट पड़ेंगी। कुछ ही दिन हुए उसका पति सिन्-फेन आन्दोलन में मारा गया है। पति-मृत्यु का उसे दुःख नहीं; जीवन सर्वस्व को खोकर भी वह कर्त्तव्य की ओर बढ़ना चाहती है–

उसने जीवन में महत्व दिया है तो केवल कर्त्तव्य को। वह और उसका कर्त्तव्य······इस समय उसका एक मात्र कर्त्तव्य है देश की स्वतन्त्रता। कमरे में वह अकेली नहीं है। उसकी पाँच सन्तानें भी वहीं बैठी हैं। सबसे बड़ा लड़का तो बीस वर्ष का है और बाक़ी चार सन्तानों में सबसे बड़ी लड़की केवल ग्यारह वर्ष की है।

× × × × ×

उस समय वह अपने बालक को जो युवावस्था में पदार्पण करने वाला था, उपदेश दे रही थी, "मुझे किसी बात की आवश्यकता नहीं। मेरे पास धन है, शक्ति है और मैं स्वयं अपनी देख-रेख कर सकती हूँ। मैं केवल एक बात चाहती हूँ और वह यह कि तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो। "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" इस समय तुम्हारा एक मात्र कर्त्तव्य है देश की स्वतन्त्रता के लिये अपने को मिटा······।

× × × × ×

शहर में कर्फ़्यू ऑर्डर था कि साँझ के बाद कोई भी दिखाई न पड़े। बाहर से किसी स्त्री के चीखने की आवाज़ आई। कमरे की खिड़की खुली हुई थी। उस बीस वर्ष के बालक ने यह जानने के लिये कि यह किसका आर्तनाद है खिड़की के बाहर झाँका। धाँय धाँय करती हुई गोलियों ने उसके सिर के टुकड़े टुकड़े कर दिये। आधे से अधिक शरीर बाहर होने के कारण धड़ाम से

उसकी लाश फुट-पाथ पर आ गिरी। रात भर वह लाश वहीं पड़ी रही। कर्फ्यू आर्डर के कारण कोई बाहर नहीं निकल सकता था।

× × × × ×

जीवन और सन्तानों की पर्वाह न कर वह भी कर्त्तव्य पथ पर डट गई। अपने तीन वर्ष के छोटे लड़के और पाँच वर्ष की लड़की को तो उसने अपने पास रखा और बाकी दोनों लड़कियों को अपने सम्बन्धियों के यहाँ पहुंचा दिया। एक ओर सन्तान प्रेम, मातृ हृदय की स्नेह-धार, दूसरी ओर कर्त्तव्य का तकाजा; दोनों ही चीज ऐसी कही जा सकती हैं, जिनमें से किसी की उपेक्षा कठिन है। मातृ-स्नेह का भविष्य उसकी आँखों में है—देश की स्वाधीनता संग्राम में उसने भाग नहीं लिया, ऐसा अगली पीढ़ी की सन्तान कहेगी, कितना दारुण होगा, उसके लिये वह भावी युग''''''और कर्त्तव्य के तकाजे पर उसे, सुख-सम्पति और प्रेम-स्नेह का बलिदान करना पड़ेगा। तो कहना नहीं पड़ेगा इस अन्तर्द्वन्द में वह विजयनी रही,—कर्त्तव्य को तरजीह देकर वह स्नेह-प्रेम के बन्धनों को तोड़ने में समर्थ होसकी''''''सन्तानों का त्याग ही नहीं—उसने अपनी लाखों की सम्पत्ति स्वाहा कर डाली, कर्त्तव्य के तकाजे पर।

× × × × ×

आयरिश च्यानल को इस ओर से उस ओर पार करते हुए

एक फटे हाल गन्दी स्त्री और उसके दो बच्चों को लोगों ने कई बार देखा है। बहुत से तो उसे पागल समझते हैं; पर किसी की कुछ कहने की हिम्मत नहीं, कारण कि जहाज का टिकट सदा उसके पास रहता है। जासूस विभाग के कर्मचारियों ने शक पर उसे कई बार पकड़ा; परन्तु कुछ न मिलने के कारण छोड़ देना पड़ा। एक दो बार तो वह बाल बाल बच गई नहीं तो जीवन से हाथ धो बैठती। अण्डों की टोकरी जिसमें गुप्त समाचार था अधिकारी ले गये। देखभाल करने पर टोकरी ज्यों की त्यों लौटा दी; नकली दांतों में और न जाने किस किस भाँति वह गुप्त समाचार लाती और ले जाती। यह स्त्री और कोई नहीं वरन् श्रीमती मलोनी थी।

× × × × ×

डब्लिन में एक छोटीसी शराब की दूकान की मालिकिन श्रीमती मलोनी है। शान्ति से अपना जीवन बिता रही है। जब कोई उससे पुरानी बातें पूछता है तो वह पति और पुत्र की तस्वीरों को दिखाकर कहती है कि इन्होंने ही नहीं; परन्तु मैंने भी अपने कर्त्तव्य का पालन किया। स्वतन्त्र आयर्लेण्ड पर उसे अभिमान है। उसकी आत्मा में शान्ति है और हृदय में गर्व। उसका देदीप्यमान मुख देखने लायक है।

बुलगारिश्क

साहित्य के आलोचकों का कहना है कि कहानी—लेखन की कला बड़ी ऊंची है सफलता पूर्वक किसी कहानी का लिख लेना एक बड़ा ही कठिन कार्य है इसलिए उस कठिन कार्य का पीछा न कर अपनी बुलगेरिया की डायरी का एक पृष्ठ आपके सामने ज्यों का त्यों रखे देता हूँ।

प्रातः काल कुछ थोड़ी सी वर्षा के उपरान्त आकाश बिल-कुल निर्मल हो गया था, ठंडी-ठंडी मस्त हवा बह रही थी। सूफिया के सारे देखने लायक स्थानों का मैं निरीक्षण कर चुका था। देहात के किसी गाँव के देखने का निश्चय कर मैं निकल पड़ा। दृश्य बड़ा ही सुहावना था। पास की पहाड़ियों को पार कर न-जाने मैं कितनी दूर निकल गया।

नौ बजे के करीब मैं एक ऐसे गाँव में पहुँचा जो लगभग पचास घरों की बस्ती होगी। सारे गाँव में धूम मची हुई थी। कुछ समय उपरान्त सारे ग्रामवासी पास ही के हरे घास के मैदान में जमा हो गये। खाद्य सामग्री एकत्रित होने लगी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि एक मुस्लिम युवक का विवाह होने वाला है। इसीके उपलक्ष्य में यह सारी चहल-पहल है।

मैं दूर से ही खड़ा हुआ सारे दृश्य का आनन्द ले रहा था कि एक वृद्ध मेरे पास आया और उत्सव में सम्मिलित होने का आग्रह करने लगा। मैं आनाकानी कर ही रहा था कि दूल्हा और दुलहिन आये और मुझे पकड़ कर ले गये। उनके इस व्यवहार को देख कर मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठा। एक अजनबी के साथ यह व्यवहार! उन्होंने मुझ से भाँति-भाँति के प्रश्न किये यह जानने के लिये कि मैं हंगेरियन होऊँ, अरब होऊं, परन्तु मैं उनकोयह किसी भी भाँति नहीं समझा सका कि मैं भारत जैसे महान् देश का निवासी हूँ।

कुछ खाने पीने के उपरान्त ग्राम वासी भांति भांति के नृत्य करने लगे। उन नृत्यों में एक नृत्य ऐसा था जिसमें कि सब लोग हाथ में हाथ मिलाकर, चक्कर बनाकर नाच रहे थे। बीच में बाजा बज रहा था। वह बाजा कोई किराये का न था, परन्तु गाँव वाले ही उसे बारी-बारी से बजा रहे थे। उसका स्वर शाद-

नाई से कुछ मिलता-जुलता था। जिसे सुनकर मुझे घर की याद आगई। सोचा कि न जात है न पाँत और न साम्प्रदायिक समस्या, हिलमिल कर एक दूसरे के काम में हाथ बँटाते हैं, कितना सुन्दर है यह ग्राम्य जीवन। क्या हम भी कभी ऐसे बन सकेंगे।

दोपहर को जब सूफिया लौटा तो मालूम हुआ कि एक बड़े रूसी गिरजे में बच्चों का नामकरण संस्कार हो रहा है, उसे देखने मैं चला गया। वहां का सारा आडम्बर, बालों का काटना, बच्चों का नहलाना, धूप-दीप आदि सब बातें हमारी भारतीय रीति के ही समान थी। अन्तर था केवल धर्म का। जब ये सब संस्कार हो रहे थे, तब हरएक बच्चे के हाथ में एक एक जलती हुई मोमबत्ती पकड़वा दी गई थी। एक हृष्ट पुष्ट बच्चे ने अपनी बगल के एक रोगी दुबले बालक के हाथ की मोमबत्ती पकड़ कर इस तरह बुझादी जैसे कि कोई अनुभवी बुझाता हो। यदि भारत होता तो वह रोगी बालक के लिये अपशकुन माना जाता, कारण कि उसका जीवन-दीप बुझा दिया गया था, परन्तु वहां उसका दूसरा ही अर्थ निकला। मोमबत्ती बुझाने वाला बालक दूसरों को सत्पथ दिखाने वाले प्रकाश का अंत करना चाहता था, इस कारण वह दुष्ट था, उसकी इस भावी बुराई को दूर करने के लिये और कई तरह के आड-

म्बर रचे गये। यह भी था वहां के धार्मिक जीवन का एक दृश्य।

दिन भर चलने के कारण खूब थक गया था। मैं किसी ऐसे स्थान की खोज में था जहां से बैठकर संध्या समय सारे शहर की हलचल देख सकूं। शहर के सब से बड़े चौक के बीच एक गिरजा है। उसकी ऊंची सीढ़ियों पर बैठने से चारों ओर का दृश्य दिखाई देता है। वहीं बैठने का निश्चय किया। जब मैं उस ओर जा रहा था, तब राह में खासी भीड़ देख कर रुक गया। भीड़ का कारण एक भूखी वृद्धा का, रोटी वाले की दूकान से रोटी उठाकर भागना था। रोटी वाले ने उसे दौड़कर पकड़ लिया था और पुलिस के हवाले करना चाहता था। वह तो हवालात में जाने को तैयार थी, परन्तु लोगों ने रोटी वाले को पैसे दे, ऐसा न करने के लिये समझा बुझा दिया। पुलिस के सिपाही भीड़ में खड़े हुये थे। सब कुछ जान कर भी अनजान बन पूछ रहे थे कि क्या बात है? कारण कि ऐसी घटनायें तो उनकी आंखों के सामने न जाने दिन में कितनी बार हुआ करती थीं। इन सब बातों का एक निष्कर्ष अवश्य था कि जेल के बाहर रह, उस वृद्धा को भूख की यन्त्रणा सहनी पड़ेगी।

गिरजे की सीढ़ियों पर मैं आ बैठा। चारों ओर कोलाहल

होने पर भी उस जनशून्य स्थान में एक तरह की शांति थी। बिजली की रोशनी से सारा शहर जगमगा रहा था। पानी बरस चुका था। उन धुली हुई, चिकनी डामर की सड़कों पर ऐसे प्रति· बिम्ब दिखाई दे रहे थे, मानों एक दूसरा शहर नीचे भी बसा हुआ हो। मैं दिन भर की सारी घटनाओं का मनन कर रहा था और समझने का प्रयत्न कर रहा था, जीवन की समस्या को।

उस समय एक अधेड़-सा मनुष्य मेरी ओर चला आ रहा था। उसके एक हाथ में, टीन में टमाटर का शोरबा और कुछ रोटियाँ थी और दूसरे हाथ में शराब की बोतल। उसकी चाल इतनी नपी तुली हुई थी, उसमें ठोसपन था। उसके सिर पर मंडासी और पीठ पर रस्सी पड़ी हुई थी, जिस से प्रतीत होता था कि वह बोझ ढोया करता था। उसके कपड़े गन्दे और फटे हुये थे। यह सब कुछ होते हुये भी उसमें एक ऐसी आभा थी कि मैं उसकी ओर देखता ही रह गया। उसमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि बार-बार उसे देखने को जी चाहता था।

वह मुझ से कुछ ही गज दूर बैठ गया। उसने मुझे इशारे से भोजन करने के लिये बुलाया। मैंने इशारे से ही उसे समझा दिया कि मैं भोजन कर आया हूँ, और शहर की चहल-पहल देखना चाहता हूँ। शोरबे के साथ उसने सारी रोटियां गले के

नीचे उतारली, बोतल वाली शराब को भी पी गया। रस्सी, मंडासी, थैला, फटा हुआ ओवर कोट, और भी जिन-जिन वस्तुओं को उसने अनावश्यक समझा एक कोने में रखदीं। उसने अंगड़ाइयां लीं और उसके शरीर में स्फूर्ति-सी आ गई।

वह धीरे धीरे मेरी ओर सरकने लगा। मैं भी उसके पास सरक कर जा पहुँचा। मुझ विदेशी को देख कर उसने मेरी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा और यह जानना चाहा कि मैं कौन हूं? मैंने अपना पासपोर्ट दिखाया और विश्वास दिलाया कि विद्यार्थी हूँ।

उसकी शंकाओं का समाधान हो गया। वह मुझसे कुछ हिलमिल सा गया। मैं न तो उसकी भाषा समझता था और न वह मेरी। वह कुछ अंग्रेज़ी के शब्द जानता था। उसने जो अपनी कहानी हाव-भाव से, पासपोर्ट से, अपनी तस्वीरों के संग्रह से और टूटे फूटे शब्दों से समझाई, और जितनी मैं समझ सका वह इस प्रकार है—

महायुद्ध के पहिले वह जिस हिस्से में रहता था वह बुलगेरिया था। वहां के निवासी पूर्णतया बुलगेरियन थे। वह एक सम्पन्न घराने का था। कई खेत थे। बाग़ बगीचे थे। वह शिक्षित था। बूढ़े माता पिता थे। सुन्दर स्त्री थी, दो, आठ और

दस वर्ष की लड़कियां थी और तीन वर्ष का एक लड़का था। उसका जीवन सुखी था। उसे बुलगेरियन होने का अभिमान था।

युद्ध छिड़ा और वह अपने देश के लिये लड़ने चला गया। जिस हिस्से में वह रहता था, शत्रु ने धावा बोला। उसका सर्वस्व स्वाहा हो गया। यहां तक कि जिस भूमि पर उसका विशाल भवन था वह भी समतल हो गई। वह कई बार घायल हुआ। एक बार तो जीवन से निराश हो चुका था, परन्तु फिर भी वह जीवित बच गया।

उन्नीस सौ अठारह के उपरान्त उसका जन्मस्थान जूगोस्लेविया नामी नवनिर्मित राष्ट्र के अधीन कर दिया गया जुगोस्लेविया के नये राष्ट्र में यदि वह चाहता तो अपनी भूमि पर अधिकार जमा एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बन सकता था, परन्तु यह सब न कर वह जूगोस्लेवियन पासपोर्ट ले सूफिया में रहने लगा।

जूगोस्लेवियन लोगों को बुलगेरियन घृणा की दृष्टि से देखते थे, परन्तु वह तो वास्तव में बुलगेरियन था, सन्धि के कारण बुलगेरिया में फौजें नहीं रह सकती थी, इस कारण यह सेना में भी नौकरी नहीं कर सकता था। युद्ध के उपरान्त देश इतना लूट लिया गया था कि जनता भूखी मर रही थी और गरीबी का कोई ठिकाना न था।

सूफिया में रह, वह दिन भर मजदूरी कर किसी तरह अपना पेट भर लेता था। रात गिरजे, कब्रिस्तान या ऐसे ही किसी शान्ति के स्थान में बिता देता था। वह केवल एक ही उद्देश्य को लेकर जीवित था, वह यह कि अपनी जन्मभूमि के लिये वह लड़े, उसे स्वतंत्र कर अपने राष्ट्र में सम्मिलित देखे। अपनी कहानी समाप्त कर उसने हाथ मिलाया और गिरजे के बरामदे के एक कौने में सोने चला गया।

मैं उस अज्ञात महापुरुष को पहिचानने का प्रयत्न करने लगा। उसका असली नाम तो मैं भूल गया, परन्तु बुलगारिश्कि शब्द वह इतनी बार प्रयोग में लाया कि उसी नाम से वह मुझे याद है।

उस समय मेरे दिमाग में जैसे कोई यह कहकर हथौड़े चला रहा था कि बुलगारिश्कि ! बुलगारिश्कि ! बुलगारिश्कि। एक ही भावना मेरे हृदय में उठी कि यदि मेरा भी देश ऐसी ही विभूतियों से भरा हुआ होता !!

—सी० एच० गौड़

श्री० चिरंजीलाल जी अग्रवाल

आशा

संसार आशा पर निर्भर करता है—संसृति का गतिचक्र आशा के सहारे चलता है—यह बतलाने की बात नहीं। मानव अस्तित्व तो निश्चित रूप से आशा का वरदान है, मनुष्य न जाने इसके सहारे कौन-कौन सी कल्पनाएँ सृजन करता—निराश मन का एक आशा ही तो सहारा है। अरे हाँ, तो उसी आशा में, मैं इतना तन्मय हो गया कि रमेश के विषय में कुछ कहना ही भूल गया।

रमेश का जन्म एक अच्छे मारवाड़ी घराने में हुआ था, उसके पिता रामगढ़—जो कि जयपुर राज्य के अन्तर्गत है—के बहुत बड़े लक्षाधीश सेठ थे। कलकत्ते, बम्बई आदि स्थानों में

उनकी दूकानें चलती थीं। काफी आमदनी थी। रमेश को उच्च शिक्षा मिली थी। मारवाड़ी समाज में प्रायः शिक्षा का अभाव है, लेकिन रमेश के पिता सेठ गोपीचन्द ने आरम्भ से ही रमेश की शिक्षा के लिए योग्य अध्यापकों को रख छोड़ा था। चौदह साल की छोटी उम्र में ही उसने 'मैट्रिक' पास कर लिया और ऊंची शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में भरती हो गया। कहना नहीं होगा वहाँ से उसने चौथे वर्ष बी० ए० की उपाधि प्राप्ति करली।

मारवाड़ी घरानों में प्रायः छोटे-छोटे बच्चों की शादी हो जाती है। जब रमेश दस-बारह साल का हुआ तभी से रमेश के साथ बहुत से लोग अपनी लड़कियों के संबंध जोड़ने के लिए आने लगे, शादी के लिए उसकी माता भी दबाव डालने लगी, लेकिन सेठ गोपीचन्द ने, एक समाज सुधारक होने की वजह से, छोटी उम्र में लड़के का संबंध किसी जगह नहीं किया। जब रमेश ने अट्ठारह साल की उम्र में बी० ए० की परीक्षा पास करली, तब तो सेठ गोपीचन्द भी सगाई को अधिक दिनों तक नहीं रोक सके। बीकानेरी सेठ रामनिवास जी बम्बई के बहुत बड़े व्यापारी थे। उनकी पुत्री के साथ रमेश की सगाई करदी गई। शादी का भी तकाजा रमेश की मां ने किया, लेकिन तत्काल रमेश की इच्छा शादी के लिए न होने की वजह से शादी मुलतवी करदी गई।

रमेश ने एम० ए० एल० एल० बी की परीक्षाएँ दो साल में बड़े ऊंचे नंबरों से पास करली और उसकी शादी की तिथि भी निश्चित हो गई।

मगर, जब रमेश को रामगढ़ में रहना पड़ा और मारवाड़ी समाज का ध्यान आया तो उसे शादी की बातों में खुशी नहीं नजर आई। मारवाड़ी समाज में लड़कियों की शिक्षा का सवाल ही क्या, प्रायः लड़के भी शिक्षित नहीं मिलते। गृह-लक्ष्मियां अपने पति के लिए भार स्वरूप भर होती हैं। वही भारी लहंगा, वही भारी दुपट्टा और वही हाथों-पावों में पुराने आभूषणों की भरमार, घूंघट में से झांकती हुई दो आंखे स्पष्ट-रूप से अपनी पतन-कहानी सुनाती रहती हैं। तो क्या उसकी पत्नी भी ऐसी होगी?—सोच-सोच कर वह विकल हो उठता। शेक्सपियर-मिल्टन की शिक्षाएँ इसका समाधान नहीं निकाल पातीं—वह और उसका मारवाड़ी समाज·········दोनों का साम्य नहीं हो सकता। जीवन-संगिनी का स्वप्न, क्या वह मारवाड़ी समाज का वरदान प्राप्त कर देख सकता है—देश और समाज की प्रगति में उसकी पत्नी उसका साथ देगी यह तो एक दम असम्भव है। विकल्पों में त्रस्त रमेश ने शादी से इन्कार कर दिया। और रमेश का इन्कार क्या करना था, तमाम गांव में शोर मच गया, कोई कहते अंग्रेजी पढ़ कर वह बिगड़

मस्तिष्क हो गया है, कोई कहते किसी मेम से उसने शादी कर करली है। और अंत में सारा दोष सेठ गोपीचन्द के ऊपर लादा जाता कि उन्होंने ही उसे अंग्रेजी पढ़ाकर बिगाड़ा है। गोपीचन्द परेशान थे। एकलौता लड़का—क्या करें, दबाव डाल नहीं सकते कहीं घर छोड़ गया तो? लड़की के पिता की तो पूछिए मत, शादी का सब इंतजाम हो गया, तिथि नजदीक आ गई, और दामाद साहब शादी करना नहीं चाहते। बड़ी बदनामी का सवाल पैदा हो गया, विवश होकर अपने भावी दामाद को समझाने वे रामगढ़ आए। रमेश को बहुत कहा गया मगर इंकारी के अलावा कोई जवाब नहीं मिला—उसकी जिद थी मैं आजन्म कौंरा रहूंगा। आखिरकार किसी तरह बात राह पर आई, शादी तो होगी लेकिन शर्त यह रहेगी कि लड़की शाश्वत-निवास मायके में रखेगी, कभी उसे सुसराल नहीं भेजा जावेगा। लड़की के पिता ने मंजूर किया कि जब तक वह खुद नहीं बुला-येगा, लड़की को अपने पास रखूंगा।

तो रमेश की शादी हुई और बहूरानी सदा के लिए मायके वापिस चली गई : समाज का अभिशाप जो पड़ा था—दम्पति शीश पर: नहीं ज्ञात कितने भावुक हृदयों में इस तरह की कसक-टीस चला करती है और कितनों को तो ऊब कर जीवन से हाथ धोना पड़ता है। यौवन के आंगन में जहां पागल हृदय कमनीय

स्वर्ग की सृष्टि किया करता वहां आगे आता है रौरव दृश्य: भारतीय दाम्पत्य जीवन में आनन्द और विहास की रेखा प्रतिकूल वातावरण में खिंचे तो कैसे ?

खैर, दिन बीतने को आते और पल-विपल चल कर वर्तमान, अतीत में मिल जाता है—जीवन का छकड़ा तो हर हालत में आगे बढ़ता ही चलेगा········सुख—दुख की सीमा उसे बांध नहीं सकती। रमेश के लिए भी वैसा ही समझिए। वर्षों बाद हरिपुरा में कांग्रेस अधिवेशन होने वाला था—रमेश भी वहां एक मारवाड़ी 'वालंटियरों' की टुकड़ी बना कर ले जाने की तैयारी में लगा। उसके उत्साह और 'आर्गनाइजेशन' की वजह से मारवाड़ियों में नया जोश पैदा हुआ। देश सेवा की लहर सारे राजस्थान में फैल गई। जयपुर राज्य के करीब १०० सज्जन हरिपुरा संम्मेलन में शरीक होने चले। रमेश अपनी टुकड़ी का 'कप्तान' बन कर चला।

सूरत में गाड़ी बदली। रमेश एक 'सैकेण्ड क्लास' डब्बे में आकर बैठा ही था कि उसी में एक नव जवान सज्जन भी आ पहुँचे, उनके साथ दो महिलाएं और थीं। यह तीनों बम्बई की तरफ के थे। नवयुवक की उम्र करीब बाइस साल की थी, सुन्दर हंस-मुख चेहरा, विशाल ललाट गुजराती रंग-ढंग से ऐसा मालूम होता था कि किसी उच्च घराने का है। बात चीत से मालूम पड़ा

युवक का नाम रामनाथ है। देवियों में एक की उम्र करीब बाइस साल और दूसरी उम्र १८ या १६ साल की थी। दोनों को अनिंद्यलावण्य मिला था—वेष विदुषियों का जैसा था और शरीर पर राष्ट्रीयता की द्योतक शुभ्र खादी की साड़ियां लोगों की दृष्टि अपनी ओर खींच रही थी। स्टेशन से गाड़ी रवाना हुई और आपस में नव परिचितों का वार्तालाप भी शुरू हुआ। रामनाथ ने छोटी महिला का, अपनी बहिन बतला कर परिचय दिया और अन्य को अपनी धर्म पत्नी बतलाया। बात-चीत के सिलसिले में रामनाथ ने अपनी बहिन का नाम आशा बताया और बताया कि वह बम्बई विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास कर चुकी है। कि बम्बई की महिला सेविकाओं की कप्तान होकर वह हरिपुरा जारही है। उसे गाना भी बहुत अच्छा आता है। इतने में रामनाथ की धर्मपत्नी चन्द्रकान्ता ने अपनी ननद की चुटकी लेकर कहा कि इनको नाचना भी बहुत अच्छा आता है।

'आशा' का नाम सुन कर रमेश के मन में तूफान उठने लगा। उसकी धर्मपत्नी का नाम भी आशा था। क्या ही अच्छा होता कि वह भी इसी आशा के समान योग्य और देश-सेवा करने वाली होती, रमेश मन में गुजरातियों की तारीफ कर रहा था और अपने को मारवाड़ी होने की वजह से कोस रहा था—

गाड़ी हरिपुरा के पहले के एक स्टेशन पर ठहरी वहां सैकड़ों स्वयं-सेवक पहिले से पहुँच चुके थे—बा० रामनाथ ने अपने परिवार के अलग ठहरने का प्रबन्ध 'तरशाला' गांव में किया था जो कि हरिपुरा से सिर्फ २ मील दूर था, बा० रामनाथ के आग्रह से रमेश ने भी वहीं उनके साथ ठहरना मंजूर कर लिया—उसी जगह दो मोटरों का अलग इन्तजाम बाबू रामनाथ ने कर लिया था। 'रमेश' और 'आशा' ठीक समय पर अपने स्वयं-सेवक के पास चले जाते थे और काम खतम होते ही वापिस तरशाला आ जाते थे—अधिवेशन बड़ी धूमधाम से हुआ, सुभाष बाबू सभापति थे—अधिवेशन के पहिले संयुक्त प्रान्त और बिहार के मन्त्री मंडल ने त्यागपत्र दे दिया था, इसलिये यह अधिवेशन और भी महत्वपूर्ण था, हरिपुरा में लाखों आदमी आये थे—जंगल में घास-फूसों का एक बड़ा नगर बस गया था—पास ही ताप्ती नदी बड़ी सुन्दरता से वह रही थी।

यहाँ रमेश ने देखा कि 'आशा' कितनी योग्य देवी है—उसके इन्तजाम के आगे उसको दांतों में उंगली दबाना पड़ता था, करीब २०० सेविकाऐं उसकी मातहती में थीं। हर जगह 'आशा' ही 'आशा' नजर आती थी—उसकी सेना का इन्तजाम सब से अच्छा था—अब तो रमेश के मन का तूफान और भी ज्यादा बढ़ गया।

अधिवेशन खतम होगया–रामनाथ बाबू का अपने परिवार सहित एक रात 'तरशाला' में और ठहरने का इरादा हुआ। भी ठहर गये—सुबह को रमेश देर से जगे—अधिवेशन में काम करने की वजह से उनको सोने का समय थोड़ा मिलता था, अधि-वेशन खतम होने के बाद खूब सुख की नींद सोये—सुबह देर से उठे तो रामनाथ और उनकी धर्म पत्नी दिखाई नहीं दीं–'आशा' आई—उससे ज्ञात हुआ कि भाई साहिब भौजाई जी को लेकर घूमने गये हुये हैं और उन्हें चाय वगैरा पिलाने के लिये उसे छोड़ गये हैं।

रमेश—आपको बड़ी तकलीफ हुई, मैं तो चाय होटल में पी लेता—दूसरे मैं आदी भी नहीं हूँ।

'आशा'—वाह-आप हमारे महमान हैं, जब हम लोग आपके यहाँ जावें, तो आप भी हमारी खातिर करेंगे ही।

थोड़ी देर में 'आशा' चाय बना कर ले आई उसके साथ हलवा—और कुछ नमकीन भी लाई—रमेश ने देख कर कहा इतना कौन खायेगा।

आशा—आप खायेंगे और कौन खायेगा, मैं भी आपके साथ खाऊंगी, आपकी वजह से भूखी हूँ।

रमेश सोच में पड़ गया–यह तरुणी एक परदेशी के लिये इतनी खातिर कर रही है और अकेली मकान पर ठहर गई है।

थोड़ी देर में दोनों चाय-पानी पी चुके, तो 'आशा' ने कहा कि भाई साहिब कह गये हैं कि मैं आप को लेकर ताप्ती पर आ जाऊं, आज नौका-विहार करेंगे—रमेश कपड़े पहन कर तय्यार हो गया—'आशा' और 'रमेश' मोटर में बैठ कर ताप्ती नदी पर आये-वहां रामनाथ उनकी पत्नी का पता नहीं था लेकिन 'आशा' ने कहा कि वे इन्तजार कर नौका विहार में लग गये हैं, हम भी चले चलें १०—१५ मिनट में वे मिल जावेंगे—एक ली, ज्यों-त्यों दोनों बैठ गये—नाव धीरे २ आगे बढ़ी।—ठंडी २ हवा चल रही थी दोनों किनारों पर बड़े २ वर्फ खड़े थे बड़ा ही शोभायमान दृश्य था—'रमेश' को नई उमंगें आने लगीं। बाद में उसको याद आई कि आशा को गाना आता है बड़े संकोच के बाद उसने आशा से कहा कि आपको गाना आता है तो गाइये।

आशा ने शरमाते हुये मंजूर कर लिया और गाना आरम्भ हुआ।

'अच्छा प्रीतम तुम्ही बताओ कैसे करू तुम्हें मैं प्यार'

'आशा' के कोकिला-कंठ से मधुर ध्वनि निकली और एक नदी की लहरों पर गूजने लगी, गाने ने और भी रमेश के हृदय की चुटकी लीं, क्या ही अच्छा होता कि उसकी धर्म पत्नी 'आशा' भी इसी तरह की होती—वह विचार धारा में लीन हो

गया; 'आशा' ने रमेश को मौन देख कर गाना बन्द कर दिया और उससे पूछा कि क्या बात है ? फिर हंस कर कहा कि कहीं बहू रानी की याद आ गई होगी।

रमेश ने उत्तर दिया कि अपनी बहूरानी से तो वह मिला भी नहीं है और न मिलना चाहता है—याद का सवाल ही पैदा नहीं होता।

आशा—तुम बड़े निष्ठुर हो—उसको साथ नहीं रखते ऐसी क्या बुराई उस लड़की ने की है।

रमेश ने अपने मारवाड़ी समाज का सारा हाल, किस तरह वह शादी करना नहीं चाहता था—किस तरह शादी की—और यह भी कि उसकी बहूरानी का नाम भी 'आशा' है सब कह सुनाई

'आशा' के नेत्रों में पानी भर आया लेकिन उसने कोई बात जाहिर नहीं होने दी और फिर हंस कर कहा कि अगर मैं ही तुम्हारी 'आशा' होऊँ तो तुम क्या करोगे।

रमेश के मुंह से इतना ही निकला—तुम मेरी आशा होती······आह ! फिर आगे था मस्तिष्क में वही स्वप्नों का जाल, मगर विकल्पों में, अघट घटनाओं की काया में—जिस आशा की गति कहीं नहीं रुकती वही आशा यहां भी शिर उभार रही थी—यह आशा भी उसकी हो सकती है—विश्वास कहता था; मैं तो साथ नहीं दे सकता—तुम निपट आशा के साथ आशा

की आशा कर सकते हो·········नीरव सरिता वक्ष—नीरव हृदय, आगे बोले तो कौन ?

आशा रमेश के पैरों पर झुक गई; मैं ही हूँ आशा, नाथ, आपको पाने के लिए ही आशा ने परिवर्तन अपनाया, अब तो तुम उसे अपनाओ ! यह कौन कहे यहां रमेश की आशा पूरी हुई या 'आशा' की आशा············

—चिरंजीलाल अग्रवाल

कायर कौन ?

"सुखदेव ! तुम्हें मालूम है न ? आजकल सत्याग्रह चल रहा है !!" हंसते हुए रामदेव ने पूछा।

रामदेव बी० ए० में पढ़ता है। उम्र है इक्कीस वर्ष। कालेज में होशियार लड़कों में गिना जाता है। राष्ट्रीय विचारों का होने से बराबर खादी का कुर्ता, गान्धी टोपी और पाजामा पहनता आया है। सन् तीस के आन्दोलन में छः महीने की सजा भी काट आया है। कालेज में कैसी भी मीटिङ्ग हो वह जरूर बोलता है। उसके लच्छेदार भाषणों से राष्ट्रीयता टपकी पड़ती है। इन विचारों के कारण कई बार कालेज के अधिकारियों से कहा-सुनी भी होगई है पर कालेज के लड़के प्रायः इसके कहने पर कुछ भी
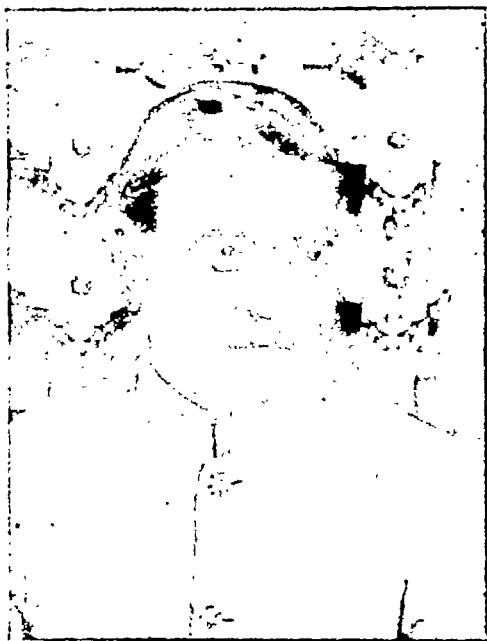
श्री वेंकटेश जी पारीख

कर सकते हैं। अतः कोई नया झगड़ा खड़ा न हो जाय, यह जानकर अधिकारी आपसी समझौते से ही काम निकाल लेते हैं। ऐसे ही वातावरण को लेकर लार्ड इरविन को कांग्रेस के सामने झुकना पड़ा था, इसलिये ऐसे समय पर क्यों कोई ऐसा कार्य किया जाय जिससे सारे देश में कालेज बदनाम हो जाय। रामदेव अनुभव कर रहा था कि कालेज के अधिकारी दबते हैं और उसका कारण मैं हूँ, तो उसमें कुछ अहमन्यता आगई थी। इस कारण वह दूसरों को अपने से कमजोर महसूस करता और चिढ़ाता भी रहता। सुखदेव को भी वह वैसा ही समझता और समय कुसमय उसे छेड़ता रहता। आज उसी गरज से उसने ये शब्द कहे। सुखदेव न समझता हो सो बात नहीं, पर रामदेव में जो उसकी श्रद्धा है वह उसे अशिष्ट नहीं होने देती। सुखदेव यह भी जानता है कि देश सेवा में सबको बराबर भाग लेना चाहिये पर बेबसी भी तो कोई चीज होती है! बूढ़ी मां, युवती वधू, दो छोटी बहिनें पीछे से कैसे रहेंगी और क्या खांयगी? रामदेव का क्या? उसके पिता के पास काफी पैसे हैं। न हो तो भी उसकी स्त्री के लिए रामदेव के भरोसे भूखों मरने की नौबत न आयेगी। यदि रामदेव आज पिता से अलग होकर भी जेल चला जाय तो भी क्या? उसकी स्त्री इन्टर पास है। और कुछ नहीं तो किसी कन्या पाठशाला में अध्यापिका ही बन जायगी।

सुखदेव सोचने लगा मेरी स्त्री ललिता वह तो पिंजड़े की चिड़िया है। उसे कोई खाना डालदे तो ठीक, नहीं तो भूखी ही बैठी रहेगी। ज्यादा पढ़ी लिखी भी तो नहीं है। हो तो भी क्या ? मां के रहते क्या वह पर्दा छोड़ सकती है ? मां भी कैसी अजीब है ! उसे मालूम पड़ जाय कि ललिता रात में पढ़ती है तो यह आकाश-पाताल एक करदे। उसका वश चलता तो वह सावित्री को स्कूल में ही न जाने देती, पर उन दिनों पिताजी जीवित थे। उनके पैर पसारते ही सावित्री का स्कूल जाना बन्द होगया। मेरा तो मां को कुछ कहने का साहस ही नहीं होता। मां को कैसे समझाऊं कि लड़कियों के पढ़ने से कोई कु-शगुन नहीं होता और न घर में दो कलम चलने से ही कोई नुकसान है।

बेचारी मां का भी क्या दोष ? उसे जैसा बालपन में सिखाया गया वैसा ही करती है। यदि उससे कुछ अन्यथा हुआ तो उसे धर्म डूबने का डर लगता है। यदि मां को मेरे जेल जाने के बारे में मालूम पड़े तो वह रो २ कर अन्धी हो जाय या सर पीटकर मर जाय। बिना मां बाप की बेचारी सावित्री और शकुन्तला बहनें कहां जायं और क्या करें ? उन्हें कांग्रेस को संभालना चाहिये यह भी कैसे हो सकता है ? वह कितनों को संभाले ? सारे देश की ही तो यह दशा है। इसी दशा को दूर

करने के लिए ही तो सत्याग्रह चल रहा है। जब तक कुर्बानियाँ नहीं होंगी तब तक देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। पर मैं तो सचमुच कायर हूँ। मेरे से यह नहीं हो सकता कि मैं जेल में बैठा रहूँ। पीछे में मेरी मां स्त्री और बहिनें तकलीफ उठावें और बरबाद हों। रामदेव भी कैसा है। मेरी बेबसी को समझता हुआ भी मुझे चिढ़ाने ही की गरज से ऐसी बातें किया करता है।

आज जब रामदेव ने जान बूझकर ऐसा प्रश्न किया तो एक बार तो सुखदेव को कुछ रंज हुआ। चाहा कि इन मज़ाकों के लिए उसे फटकार दूं, पर दूसरे ही क्षण रामदेव की देशभक्ति ने श्रद्धा को चेताया और सुखदेव ने शान्त होकर जवाब दिया, "हां, मालूम है। जहाज पर से महात्माजी को गिरफ्तार कर लिया गया था, तभी से सत्याग्रह चालू हो गया।"

"अच्छा! हजरत को यहां तक मालूम है! तब तो आन्दोलन में जरूर चलोगे न!"

"नहीं भइया......"

"भइया भइया कुछ नहीं। चलना पड़ेगा।"

"मेरे पीछे मां, बहिनें और वह है।"

"अच्छा उस गुड़िया को छोड़ नहीं सकता।"

"ना, ना, बात यह नहीं, पर तू ही बता मेरे पीछे

उनकी......।"

"यह सब कुछ नहीं। तुम में ही कायरता है। नहीं तो देश के आगे मां और बहिनें क्या हैं ? हां तू मरने तो जा ही नहीं रहा है जो इतनी फिक्र करे। देश के लिए आत्म—बलिदान की हिम्मत चाहिए हिम्मत !!"

सुखदेव स्तम्भित नेत्रों से रामदेव की ओर एकटक देख रहा था और सोच रहा था कि कैसा वीर है। देश के लिए प्राण हथेली पर लिए फिरता है। न स्त्री का, न मां, बाप, भाई बन्धुओं की ममता और धन का लोभ ही इसके कार्यों में रुकावट डालता है। पिछली बार कैसी शान से जुलूस के साथ गया था। शेर की तरह मीटिङ्ग में दहाड़ता हुआ गिरफ्तार हुआ था, और एक मैं जो उस समय शहर की उन सड़कों से—जिन पर जुलूस निकलने की संभावना रहती—नहीं निकलता। यदि अचानक कभी मुठभेड़ हो जाती तो डरके मारे सिकुड़ जाता।

"किस चिन्ता में पड़ गये ? इससे तो अच्छा यह होता कि तुम ललिता की चूड़ियां पहिन लेते। अच्छा, आज की मीटिङ्ग में तो आना, वहां तो गिरफ्तार होने का डर नहीं है, यह कहता हुआ रामदेव विद्यार्थियों के झुंड की ओर लपका और वहां भी फिसड्डियों को जली-कटी सुनाने लगा।

कालेज के दालान में विद्यार्थी जमा थे। मीटिङ्ग का ढाँचा

सोच रहे थे। खेल के घन्टे की प्रतीक्षा थी। इतने में घंटा बजा और सारे विद्यार्थी जमा हो गये। मीटिंग शुरू हुई। छात्र-कमेटी के सदस्यों के भाषण होने लगे। विषय था, कालेज पर झंडा फहराया जाय। सुखदेव कालेज में ही था और मीटिङ्ग की कार्यवाही भी देख रहा था, पर दूर से पुस्तकालय के बरण्डे में से। उसका हृदय दुविधा में पड़ा हुआ था। वह चाहता था कि नीचे दालान में भी न जाय और मीटिङ्ग में भाग भी ले, पर यह कैसे हो सकता था ? उसे भय था कि ऐसा विषय जिस सभा में उपस्थित हो, वहां जरूर पुलिस आवेगी और मैं भी पकड़ा जाऊंगा। ऊपर से देखते रहने में उसे रामदेव के बाग्बाणों का डर था। कभी मोटी सफील की ओट में, तो कभी अधखुले किवाड़ों की ओट में छिपकर वह मीटिङ्ग देख रहा था और प्रतीक्षा कर रहा था पुलिस के आने की। उसने अपना सारा प्रोग्राम भी बना लिया था ' सोचा कि यदि नीचे धर पकड़ शुरू हुई तो मैं टेबुल कुर्सियों की आड़ में छिप जाऊंगा या कहीं चला जाऊंगा'। उसका सारा प्रोग्राम धरा ही रहा। न तो पुलिस ही आई और न ही कोई गड़बड़ी ही हुई। मीटिंग शान से सम्पन्न हो गई। झण्डा फहराने का कार्य वर्किङ्ग कमेटी को सौंपा गया और उसकी सूचना पर झण्डा-सलामी के लिए तैयार रहने की सब छात्रों को हिदायत मिल गई। उसके उपरांत

सब छात्र अपने अपने कार्यों में लग गये। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सुखदेव छुट्टी होने के बाद सेठ रामप्रताप गोरखनाथ के यहां एक घंटा टाइपिस्ट का काम करके और उसके उपरान्त एक घन्टे का ट्यूशन कर करीब सात बजे घर पहुँचा। भोजन करते समय अपनी माँ और बहिनों को देश के ताजे समाचार कहे। कालेज वाली घटना भी कह सुनाई। सुनकर माँ स्तम्भित रह गई। इतने में छोटी शकुन्तला ऊं-ऊं करने लगी और अपनी आवाज को मध्यम-षड्ज के स्वरों में उच्चारने लगी। बहुत बार पूछने पर पता चला कि आज पड़ोस में निम्बो के पास झण्डा देखा था, तभी से भरी बैठी है कि भाई के आने पर मैं भी झण्डा माँगूंगी। भाई जब और बातें करने लगा तो वह झण्डे वाली बात भूल गई थी, पर झंडे का नाम सुनते ही उसे याद हो आई और मचल बैठी।

इस जरासी बात के लिए उस छोटी सी बालिका को कई परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा। उसे भाई की ओर सतृष्ण नेत्रों से, बहिन की ओर सहायता याचक नेत्रों से, मां की ओर अपराधी नेत्रों से, तथा दूर बैठी हुई भाभी की ओर पीठ-मर्दक नेत्रों से, न जाने कितनी बार देखना पड़ा। उसको ऊं-ऊं करना पड़ा, हिचकियां लेनी पड़ी, मां, बहिन और भाई की झिड़कियां

व प्यार भरे पुचकार सहने पड़े और भाभी की प्रेरणा सूचक भृकुटियों को घूंघट में ही निहारना पड़ा, तब जाकर कहीं यह सब बता सकी। इतने परिश्रम से कही बात वह यों ही, थोड़े ही छोड़ देती। भाई से सिर्फ झण्डा ला देने की "हां" सिर्फ "हां" कहलवा के छोड़ा।

सावित्री जो भाई की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी, बोल उठी, "इसमें सरकार का क्या नुकसान है ? वह क्यों हमें हमारा झंडा नहीं फहराने देती ? क्यों नहीं हमारा स्वराज्य हमें दे देती ? दूसरों की चीज लौटाने में कोई आनाकानी करता है ?"

"मानलो किसी की नीयत बिगड़ जाय और वह न देना चाहे तो", सुखदेव ने उत्तर दिया।

"उस पर मुकदमा चलाया जाय।"

"अहाहा......पर जब अदालत ही उसके हाथ में हों तो क्या किया जाय ?"

सावित्री के पास कोई उत्तर न था। सुखदेव फिर कहने लगा, "सरकार यह चाहती है कि हिन्दुस्तान गुलाम रहे और उसी में उसका फायदा है। अतः वह हमें स्वतंत्र नहीं होने देती और हर काम में अड़चन डालती है।'

"तो तुम लोगों में कुछ जान नहीं है। लड़ाई क्यों नहीं छेड़ देते ?"

"लड़ाई तो छेड़ रखी है। सत्याग्रह और क्या है?"

"भाई तुम मुझे नहीं समझे !!!"

मां चिल्ला उठी, "कलमुंही, तू कहां से यह सब सीख गई? बंधे बंधे मरवायगी क्या ! जा भाग यहां से। (सुखदेव से) सुक्खा, तू भी माने नहीं न जब देखो तब यही बातें मेरे मरने तक तो कुछ भी मत कर बाद में तू जाने।"

सुखदेव चुपचाप भोजन करने लगा। मां और भी कुछ बड़बड़ाती रही सावित्री भागकर अपनी भाभी के कमरे में चली गई देखा भाभी को शकुन्तला झन्डे की बात कह रही है और बता रही है कि कल मैं भी झंडा लेकर यों फहराती हुई निकलूंगी और निम्बो को चिढ़ाऊंगी ललिता ने सावित्री से बीच ही में भाग आने का कारण पूछा सावित्री ने सारी बातें दोहराई और वहां भी परामर्श चालू हो गया शकुन्तला झंडा मिलने की खबर सहेलियों को देने का मौका देख खिसक गई, क्योंकि उसे इन बातों से क्या? उसे तो झंडा मिलने से मतलब, सो तो कल मिल ही जायगा।

"भाभी, आज मैं अपनी सहेली चम्पा के घर गई थी। वहां रामदेव सबको समझा रहा था कालेज वाली घटना भी बताई उसने कहा कि आज तो कुछ हुआ नहीं कल जब प्रिन्सिपल जी बाहर से आयंगे तो देखा जायगा अधिक से अधिक हम

लोग गिरफ्तार हो जायंगे और वहां सब को आन्दोलन में भाग लेने के लिए कहा।"

"स्त्रियां भी जांयगी क्या ?"

"अरे हां, नूरी, चम्पा आदि ने नाम लिखा दिया है राम-देव की स्त्री विमला भी तैयार है, मुझे नाम लिखाने को कहा, पर बीच में ही चम्पा बोल उठी कि यह तो सुखदेव की बहिन है। रामदेव मेरा उपहास कर बोला कि तब तो इसे पूछना भी न चाहिये भाभी सब ने मुझे चिढ़ाया कि मेरा भाई कायर है।"

"अपने भाई से यह सब जाकर क्यों नहीं कहती ?"

"कहना तो न जाने क्या क्या चाहती हूँ पर मां···मां"···

"सावित्री ! सावित्री !! तुझे आज क्या हो गया है ? क्यों जीभ चलाती है ? इधर आकर भाई के हाथ धुला, उधर से मां ने आवाज लगाई।"

सुखदेव भोजन करके पानदान में से पान निकालना ही चाहता था कि चन्दो आया और कहने लगा, "तुझे मालूम होगा छुट्टी के बाद ही झंडा फहरा दिया गया है, मुझे अब खबर लगी है कि प्रिंसिपल साहब आगये हैं कालेज के अधि-कारियों की मीटिङ्ग हो रही है न जाने क्या तय करें ! पर यार ! कहीं तू रामदेव के विरुद्ध मत हो जाना इस आन्दोलन में तो साथ देना।"

सुखदेव ने कई जवाब नहीं दिया, पर उसकी आँखों से दो बूंद आंसुओं की टपक पड़ी चन्दो पान खाकर चलता बना थोड़ी देर बाद सुखदेव भी अपनी मां से पूछ कर, विचार मग्न हो रात्री की ट्यूशन पर चला गया। ललिता और सावित्री मां के पैर दबाने लगी और शकुन्तला झंडे का स्वप्न देख रही थी।

× × + +

रामदेव झुंझला कर कह रहा था, "विमला, तुम पढ़ी लिखी होकर क्या बात कह रही हो ? मैं तो चाहता था कि तुम जेल चलोगी, पर यहां तो उलटी ही बात मिली।

"बस, बार-बार तुम तो मेरा पढ़ना लिखना बखानने लगते हो। मैं कोई अच्छी बात कहूँ तो तुम टाल देते हो। जब मैं कालेज में पढ़ती थी उन दिनों तुम कितने सुन्दर लगते थे, पर जिस दिन से तुमने खादी पहिनी भिखारी से दिखाई पड़ते हो। ये मोटे २ बेढंगे कपड़े कैसे भद्दे मालूम होते हैं। इच्छा होती है कि इन्हें फाड़ फेंकूं। अब फिर जेल जा रहे हैं। उस बार तो आये ये अधमरे होकर। मुझे जेल-वेल अच्छा नहीं लगता।

"पगली हु गई क्या ?"

"हां, हां, पगली हो गई हूँ। कुछ पहनती हूँ, श्रृंगार करती हूं तो फैसनेबल बताने लगते हो, कुछ कहती हूँ तो पगली। हाँ पगली तो हूं ही और जेल नहीं जाने दूंगी।"

"तुम अनुभव नहीं करती कि देश पर सङ्कट है।"

"मुझे नहीं चाहिए देश, पहले घरवालों को तो सुखी बनाओ। बेचारे सुखदेवजी हैं, कभी इस तरह का नाम तक नहीं लेते।"

"वाह, वाह, तुम तो उसे जाहिल समझती थी और कहती थी कि कैसा आदमी है, ललिता का पर्दा भी नहीं छुटाता है और आज तुम उसे इतना चढ़ाने लगीं।"

"वह बेचारा क्या करे? उसकी मां के डर से ललिता ही नहीं छोड़ना चाहती।"

"वे तुम्हारी तरह बेडौल तो नहीं रहते और न माँ जी से किसी तरह की जिद ही करते हैं।"

"उस कायर का क्या? मैं तो अवश्य जेल जाऊंगा।"

"मैं देखूंगी कि तुम किस तरह जाते हो?"

"तुमने जो पर्दा छोड़ा वह क्या इसीलिये और एफ० ए० तक शिक्षा पाई वह क्या इसीलिये?"

"पर्दे का क्या? कोई पढ़ी लिखी पर्दा नहीं करती; पर सिवाय दो चार को छोड़ वे सब जेल तो नहीं जाती।"

"देश का दुर्भाग्य!!"

"ऊँह!"

"ऊंह क्या? मैंने तेरे लिए सब से कह दिया है कि वह जेल जायगी।"

"मुझ से बिना पूछे ही!! कह दिया होगा। मैं क्या करूँ?"

"रामदेव, ओ रामदेव," बाहर से आवाज आई। रामदेव बाहर से आया तो देखता है कि चन्दो खड़ा है। चन्दो ने बतलाया कि प्रिंसिपल के आने की सब जगह खबर कर दी गई है और पूछा कोई विशेष खबर तो नहीं आई। मोहन के पास चलकर आगामी प्रोग्राम बनाने का निश्चय किया गया। रामदेव और चन्दो चले गये और विमला झुँझलाती रही।

उधर ललिता सुखदेव से कह रही थी, "जब तुम्हारे सब मित्र सत्याग्रह में भाग ले रहे हैं तो तुम क्यों नहीं लेते ?"

"यों······ही······ ···"

"यों ही क्या ? लोग तुम्हें कायर समझते हैं। बेचारी सावित्री जब से सुनकर आई है तब से दुखी है। उसे चैन नहीं पड़ती। चार पाँच बार तो मुझे आ-आ कर कह गई है। पर तुम्हें क्या, किसी को दुःख हो या सुख।"

"ऊं ऊं ह·········"

"सुना है रामदेव और विमला दोनों सत्याग्रह में भाग लेंगे और जेल जांयगे।"

"नां···यें···शायद···पता नहीं···तुम्हें किसने कहा ?"

"सावित्री रामदेव के मुंह से सुन कर आई है।"

'ओ ओ···ह·········"

"क्या बात है ? निस्सासें क्यों छोड़ने लगे।"

"यों ही।"

"तुम्हारी यों ही का कुछ पता नहीं लगा।"

"बात यह है कि सत्याग्रह का काम ठहरा। न जाने कितने दिन की—छः महीने या डेढ़ वर्ष की काटनी पड़े। तब तक घर खर्च के लिये पैसे कहां से आंयगे? अब तो पढ़ता भी हूँ और मैं तीस चालीस का महीना घर खर्च के लिये भी बचा लेता हूँ। एक बात और भी है किसी दिन मैं थोड़ी सी देर कर आता हूँ तो तुम लोग कैसे करने लगती हो? फिर किस तरह रहोगी? मां तो रो २ कर अंधी हो जायगी और यदि मर जाँय तो तुम क्या कर लोगी? वे दिन तुम लोगों ने किसी तरह निकाल भी दिये तो क्या छूट कर आते ही मुझे नौकरी मिल जायगी? पढ़ाई तो जायगी ही पर ये नौकरियाँ भी जांयगी। टाइपिस्टी के लिये कितनी दौड़ धूप करनी पड़ी थी। मुझ से यह नहीं देखा जाता कि तुम लोग बर्बाद हो जावो।"

"हाँ, यह बात तो है, पर संसार की ओर भी देखो। लोग आज तो सावित्री को चिढ़ा रहे हैं। कल मुझे भी जली कटी सुनाने लगेंगे। पति की निन्दा सुनने से तो मरना अच्छा।"

"मैं क्या करूं? परिस्थितियाँ ही ऐसी है। मेरे हृदय में भी देश प्रेम और बलिदान की भावना है पर······"

"हाँ, हाँ, भइया जरूर जाना। पर-फर रहने दो," भर-

भराती हुई आववाज बाहर से आई। सुखदेव जान गया कि आज बातें सुनने के लिये सावित्री भी बाहर खड़ी है, सो उसने भीतर ही से जवाब दिया, "अच्छी बात है। अब जा तू सो रह।"

"जरूर आयगा न।"

"हाँ, हां, अब सोजा।"

पास के कमरे से शकुन्तला के रोने की आवाज आई और सावित्री उसके पास जाकर सो गई।

दूसरे दिन कॉलेज के अधिकारियों ने छात्र कमेटी को मानने से इन्कार कर दिया और वर्किङ्ग कमेटी के सातों सदस्यों को कालेज से निकाल दिया। छात्रों ने हड़ताल करदी और पिकेटिङ्ग बैठा दी। पिकेटरों को गिरफ्तार करने के बावजूद भी हड़ताल पूर्ण रही। एक सप्ताह से जब ऊपर हो गया तो सरकार ने कालेज ही बन्द कर दिया। जो सरकार परस्त लोगों के लड़के थे या सुखदेव की परिस्थिति के थे उनको दूसरे कालेजों में प्रविष्ठ होने के लिये प्रमाण पत्र देने की घोषणा की गई तो सर्व प्रथम सुखदेव ही ने प्रमाण पत्र लेना चाहा, पर घर पर पिकेटिङ्ग के डर से नहीं ले सका।

विद्यार्थियों के आन्दोलन में भाग लेने से सत्याग्रह और जोर पकड़ गया। सरकार पछताई और किसी तरह समझौता

कर कालेज खोलना चाहा पर अब क्या थे?

सत्याग्रह के संचालकों ने यह निश्चय किया कि विदेशी कम्पनियों के साथ किसी तरह का व्यापार न किया जाय। इसके लिये स्टॉक एक्सचेञ्ज, कॉटन मार्केट, मारवाड़ी बाजार पर पिकेटिङ्ग करना अनिवार्य था और उसके लिये रामदेव जैसे उत्साही कप्तान की आवश्यकता थी। उन्हें यह विश्वास था कि यदि यह बायकाट सफल हो गया तो सरकार को परास्त होते देर न लगेगी। रामदेव को बुलाया गया और कार्य भार सौंप दिया गया। सत्याग्रही बाहर पिकेटिङ्ग करते और ऐसे कई व्यापारी अन्दर रहते जो निगाह रखते कि कोई विदेशी कम्पनी से व्यापार तो नहीं कर रहा है। जांच करने पर मालूम पड़ जाता कि किसी ने विदेशी कम्पनियों से व्यापार कर लिया है तो उसका बायकाट कर दिया जाता। किसी व्यापारी का यदि तीन दिन के लिये भी बायकाट कर दिया जाता तो उसे भारी हानि उठानी पड़ती। अतः सहज ही इन बाजारों पर कब्जा हो गया।

विदेशी व्यापारी व सरकार झल्लाई और सत्याग्रह को जोर से दबाने का निश्चय किया। सत्याग्रह कमेटी को भी तुरन्त ही सारी खबर मिल गई। बाजारों पर पिकेटिङ्ग जोरदार बना दी गई और हिदायत दी गई कि यदि तुम लोगों पर पैर देकर ही

कोई आना चाहे तो भले ही आने देना पर वैसे कोई आने न पाये। उस दिन सरकार ने भी विशेष कार्य किया और सत्याग्रहियों को पकड़ना और डण्डे मारना चालू कर दिया।

स्टॉक एक्सचेञ्ज पर रामदेव स्वयं उपस्थित था। सब देश भक्त चिन्तित थे, कि यदि आज विदेशी कम्पनियों के एजेन्ट अन्दर आ गये और पिकेटिङ्ग कमजोर रही तो पिछली सारी कसर निकाल लेंगे। एक ही दिन में करोड़ों रुपयों का व्यापार विदेशी कम्पनियां कर लेंगी और भविष्य में बायकाट असफल रहेगा।

लाल रंग की एक डबल मोटर आई और स्वयं-सेवक सन्नद्ध हो गये। मोटर एक क्षण के लिये रुकी। स्वयं-सेवकों के कप्तान ने देखा अन्दर विदेशी कम्पनियों के एजेन्ट बैठे हैं। सशस्त्र पुलिस, गोरा सार्जेन्ट, तथा मोटर ड्राईवर भी अंग्रेज है। मोटर में से दूर हटने की आवाज आई।

सत्याग्रही कप्तान बोल उठा, "हमारी छाती पर से जा सकते हो।"

मोटर में से किसी ने अंग्रेजी में चेतावनी दी कि तीन बार कहने पर भी यदि न हटे तो मोटर ऊपर से चली जायगी। मोटर के भीतर से आवाज आई, "हटो।"

कप्तान सोचने लगा,—"कर्तव्य, देश प्रेम, स्त्री,·····मां;··

बाप··· पिकेटिङ्ग··········।"

"हटो।"

फिर चिन्ता, "······जीवन······।"

"हटो !!!" और उसके साथ ही मोटर की घरघराहट···।

कप्तान अपनी जगह से हट गया। लोगों ने कहा, "छी !!!" और मोटर स्टॉक एक्सचेञ्ज के अन्दर; परन्तु ड्राईवर को मालूम हो गया कि दुर्घटना हो गई है। लोग चिल्लाये, "वन्दे-मातरम्, महात्मा गांधी की जय।" बाजार बन्द हो गये। देश की विजय हुई।

सुखदेव, रामप्रताप गोरखनाथ की दूकान पर टाइप कर रहा था। अकस्मात वह आया और वहां वह अद्भुत दृश्य देखा। देखी रामदेव कप्तान के मुंह पर विभिन्नता और विचार किया देश के आन्दोलन की सफलता और असफलता का, रामदेव के स्थान पर सुखदेव डट गया। उस समय उसके हृदय में मां, बहिने, स्त्री नहीं थी, था केवल एक देश प्रेम और उसी पर उसने अपने को बलिदान कर दिया।

कुछ दिनों उपरान्त ज्ञात हुआ कि रामदेव ने यह कह कर कि देश के साथ विश्वास घात करने का दण्ड भोग रहा हूँ आत्महत्या करली।

प्रेम

राधा पाँच वर्ष की भी न हुई थी कि उसकी माँ चल बसी। राधा के पिता पंडित राम-मनोहर जी सनातनी होते हुए भी राष्ट्रीय विचारों के थे। अपने जन्म-स्थान से बहुत दूर राजपूताने के किसी गाँव में मारवाड़ी सभा से संचालित किसी स्कूल में आज दस वर्ष से पढ़ा रहे हैं। उनका गाँव वालों से बहुत मेलजोल है। यही कारण है कि घरबार को भूलकर अपनी बच्ची सहित वहाँ रहते हैं।

राधा की माँ के मरने के बाद एक वर्ष तक राधा अपने

ननिहाल रही, पर पंडित जी का मन न लगा। राधा ही तो पत्नी का स्मृति चिन्ह तथा तद्रूपा होने से उनके जीवन का अवलम्ब थी। उसे क्योंकर अपने से दूर रहने देते। उन्होंने उसे बुलवा लिया और तभी से वह उनके पास रहती है।

राधा खेलती, कूदती, हँसती और शैतानी कर बैठती। कभी-कभी पंडित जी से नाराज भी हो जाती। उसकी इन सभी बातों को देखकर वे खुश होते। कई बार पंडित जी राधा को प्यार भरी नजर से देखकर एक दीर्घ विश्वास छोड़कर रह जाते। वह जबसे गांव आई है तभी से पंडित जी के साथ स्कूल जाती है। पाँच वर्ष की होने पर पंडित जी उसे भी पढ़ाने लगे। जब वह पट्टी पर अजीब आकारों के क, ख, ग, लिखकर ले जाती, तब पंडित जी खूब ही हँसते और उसे ठीक से लिखकर लाने को कहते। राधा फिर लिखती और तोतली जबान से बोलती भी जाती, तो सारे स्कूल में कहकहा मच जाता। राधा रामू की स्लेट छीनकर फेंक देती और नाराज होकर भाग जाती।

स्कूल में चालीस पैंतालीस लड़के लड़की पढ़ते थे, पर राधा के तो इने गिने तीन साथी थे। गुलाब बनिये की लड़की थी और रामू और गुमाना चमार और कुम्हार के लड़के थे। इन सब में रामू से ही उसकी अधिक बनती थी। कभी तो ये चारों गिल्ली-डंडा खेलते और कभी नाहर बकरी, या लूणकशाती, या आफिन-

स्यारी; पर राधा कभी चोर नहीं बनती। उसकी जब बारी आती तो रामू को ही उसका पार्ट पूरा करना पड़ता। यदि दूसरे न मानते तो ये दोनों खेल ही छोड़ देते।

वर्षा के दिन थे चारों ओर हरियाली ही हरियाली थी। खेतों में अन्न लहलहा रहा था और ये चारों साथी उन हरेभरे खेतों में आंख मिचौनी खेल रहे थे। इतने में रामू को एक मजाक सूझा। उसने फूलों से लदी एक बेल राधा के गले में डालकर उसे चोर बना दिया। राधा ने भी झट से दूसरी बेल तोड़कर रामू के गले में डालकर उसे भी चोर बना दिया। इस पर वे हँसे और उनकी हँसी सुनकर गुमाना और गुलाब आये और लगे दोनों को चिढ़ाने।

जो बात खेल, कूद, हँसी में रहती वह स्कूल में तथा घर में न रहती। वहाँ तो रामू को दूर ही रहना पड़ता। यह बात राधा को बुरी लगने लगी। एक दिन पिता से उसने इसका कारण पूछा। उन्होंने लम्बा चौड़ा भाषण झाड़ दिया पर राधा को सन्तोष न हुआ। वह निर्बोध बालिका यह न समझ सकी कि मनुष्य ही मनुष्य से घृणा क्यों करे? यदि धन्धा ही किसी को स्पृश्य और अस्पृश्य बना देता है तो राम को इन दिनों ब्राह्मण समझा जाना चाहिये। पर यहाँ तो जन्म से ही कोई अछूत और कोई पूज्य, न जाने यह कैसा जाल है?

छठवीं की परीक्षा देने के उपरान्त राधा ने स्कूल जाना बन्द कर दिया है। स्कूल में भी बहुत परिवर्तन होगया है। नया मकान बन गया है और पुराने छात्रों में से एक दो को छोड़कर सब अपने २ कार्य से लग गये हैं। रामधन ब्राह्मण का लड़का तो पोथी पत्रा लेकर पंडित बन गया है। ग्रामीण जनता से इस लोक में रहने का किराया तथा स्वर्ग में भेजने का पेशगी भाड़ा लेने लग गया है। गुलाब छुटपन में ही एक बूढ़े को बेच दी गई थी। बूढ़े को मरे छः महिने हो गये हैं। वह दो बच्चों की माँ और सारे धन की मालिकिन है। सुना है कि उसका आचरण ठीक नहीं और उसे बिगाड़ने में सेठजी का हाथ था। गुमाना मजदूरी कर सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है। रामू मिडिल पास कर अपने बाप के पास रहता है। महायुद्ध से उसका बाप जीवित लौट आया और तभी से उसे पेंशन मिलती है।

एक दिन पण्डितजी ने रामू के बाप से कहा—" रामू बुद्धिमान है, चौधरी, उसे आगे क्यों नहीं पढ़ाते ?"

" ठाकुर साहब ने गढ़ में बुलवाकर मना कर दिया है कि अब मैं रामू को आगे न पढ़ाऊँ, नहीं तो गाँव छोड़ना पड़ेगा। पढ़ाकर ही अब क्या होगा? मुझसे तो बाप दादों का मकान नहीं छोड़ा जाता। चमड़े का काम सिखा रहा हूँ। पेट भरने लायक कमा ही लेगा।"

रामू पण्डित जी के घर का भी काम काज कर दिया करता है। उनका उस पर स्नेह है, अतः छूवा छूत का अधिक ध्यान नही रखा जाता। राधा और रामू अब भी मिलते हैं, पर वह बालापन का निष्कपट और निःसङ्कोच मिलन नहीं है। पुरानी चंचलता लोप होगई है। उन दोनों हृदयों में प्रेम बढ़ता जारहा है, पर अवस्था के साथ साथ संकोच भी बढ़ रहा है। उन दोनों आत्माओं के बीच एक भयंकर दीवार खड़ी होगई है जो उन्हें खुलकर नहीं मिलने देती।

राधा सोचने लगी, "मैं अब उससे पहिले की तरह क्यों नहीं मिलती? क्या वह अछूत और मैं ब्राह्मण हूं इस लिये? छीः छीः यह बात तो नहीं जचती। तो क्या है? मैं क्यों उसके सामने जाते समय विह्वल हो जाती हूं और उस विह्वलता को छिपाने के लिये एकान्त में क्यों चली जाती हूँ? मुझे यह विह्वलता क्यों होती है? क्या उसका भी यही हाल है? होना तो अवश्य चाहिये। वह भी तो मुझे देखकर ठिठक जाता है। उसके रोंयें खड़े हुए से मालूम होते हैं और वह किंकर्तव्य विमूढ़ सा रह जाता है। यह विह्वलता क्या है? इसमें एक तरह का मिठास सा अनुभव होता है और किसी वस्तु को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जान पड़ती है।

"मैं चाहती हूँ यह आनन्द सदा मिलता रहे। यह वास्तव में है क्या? कहीं हमारा आपस में प्रेम तो नहीं है! होगा!! क्या

यह प्रेम मेरा विवाह होने के बाद भी रहेगा ? मैंने पतिदेव को तो देखा ही नहीं है। विवाह क्या है ? क्या मैं अपने पति से प्रेम कर सकूंगी ? सम्भव नहीं ! किन्तु मैं क्या क्या सोच रही हूं। कहां का विवाह और कहाँ की बात। यदि मेरे विचारों को कोई जानले तो सारा मामला ही चौपट होजाय। मेरा विवाह रामू से क्यों नहीं हो जाता ? रामू से कहूँ क्या ? पहिले मुझे जान तो लेना चाहिये कि वह मुझसे कितना प्रेम करता है। मैं भी कैसी अविश्वासिनी हूँ। कितनी बार जान चुकी हूं। यह भी मैं जानती हूँ कि इस विषय पर वह मुझसे कुछ कहना चाहता है पर मेरा रुख देखकर डर जाता है या उसे स्वयं अछूतपन याद आजाता है। क्यों नहीं वह जी खोलकर मुझसे कह देता ? तो क्या मुझे ही कहना पड़ेगा ? कहूंगी और अवश्य कहूँगी।"
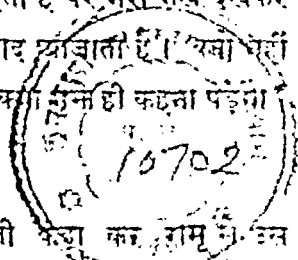
राधा नित्य ऐसे सङ्कल्प करती। जी कड़ा कर रामू से इस विषय को छेड़ती; पर इधर उधर की बातों में ही उसका अन्त हो जाता।

रामू की भी हालत अजीब थी। वह सोचता, "क्यों मैं राधा के साथ इतना घुला मिला ? मैंने राधा के गले में बेल डालदी थी, उस समय कोई भाव नहीं था; परन्तु अब तो हम दोनों एक दूसरे से सदा के लिये बंधे मालूम पड़ते हैं। मैं राधा को क्यों न कहदूं कि वह मुझसे प्रेम न करे और मुझे भी इस मोह से परे होजाना

चाहिये; पर यह तो सम्भव नहीं जान पड़ता। मैं हूँ चमार और वह है ब्राह्मण, यह कैसे निभेगा। संसार हमें जीवित नहीं रहने देगा, धर्म डूब जायगा। प्रेम के लिये भी क्या जाति पाँति का बंधन है? यह सब झूठ है। वह कुछ नहीं सुनता। बचपन में खेले कूदे और साथ रहे तो आगे भी क्यों न ऐसा हो। इसमें समाज की कौनसी हानि होगी? यदि ऐसी बातें सम्भव हों तो जीवन कितना सुखमय बन सकता है? समाज तो ऐसा नहीं चाहता। वह तो चाहता है कि हम गुप्त से गुप्त व्यभिचार करलें और समाज के सामने पवित्र बने बैठे रहें। मुझे रमेश जी मास्टर अच्छे लगे, यहाँ से भागकर उन्होंने अपनी मुस्लिम प्रेमिका के साथ विवाह कर लिया। राधा को भी यही बात कहूँगा। वह राजी होजायगी। आजकल खिची सी कैसे रहती है। बात भी ऐसे करती है जैसे बला टालती हो। उसका मन किसी दूसरी तरफ रहता है और अडंग बडंग बातें मुझसे किया करती है। वह कहीं मुझसे घृणा तो नहीं करती है? ज्ञात तो नहीं होता। कुछ भी हो, अब तो साफ़ साफ बातें करही लेनी हैं। कल अवश्य कर लूंगा।"

परन्तु रामू का वह कल कभी न आया, जिसमें बात पक्की करले। पण्डितजी के आने के बहुत पहिले वह आता। भूमिकायें बँधती, पर मूल तत्व तक वे कभी न पहुंच पाते। पण्डित जी आजाते। सारा मनसूबा आगे के लिये स्थगित कर दिया जाता और दोनों अपने अपने काम से लग जाते।

पण्डित जी राधा के विवाह के लिये बार बार सोचा करते। वे चाहते थे सुन्दर, सभ्य और सुशील वर जो राधा को सुखी कर सके। दहेज का हिसाब लगाते। बरात का अनुमान करते और सोचते कि विवाह यहीं करें या अपने मित्र के गाँव में। वे कल्पना सागर में इतने डूबते कि राधा का विवाह कर उसे ससुराल भेजने तक का सारा कार्य निर्विघ्न पूरा कर जाते। राधा को विदा करते समय वे सचमुच फूट-फूट कर रोने लगते। उसी अवस्था में उन्हें एक तरह का अभाव अनुभव होता, रोना कुछ ढीला पड़ जाता कि सहसा किसी बात के स्मरण से उससे भी जोर से रोने लगते। तब तक रोते रहते जबतक कोई दूसरी बात याद न आ जाती या कोई बुला न लेता।

यह दृश्य राधा कई बार देख चुकी थी। जब कभी उसको पिताजी के रोने के कारण का दूसरा हिस्सा मालूम पड़ता तो उसके हृदय में मातृ-प्रेम उमड़ पड़ता, जो उसके उद्विग्न मन को तसल्ली देता, तथा उसे रामू के प्रेम को किसी पर प्रगट होने से बचाता। जब कभी पण्डित जी राधा को उदास देखते तो सोचते कि माँ की याद आगई है और पंडित जी सान्त्वना देते देते स्वयं निस्सासें लेने लगते। राधा की व्यथा को वे न समझ पाते, इस कारण वह दूर भाग जाती।

दो-पहर को एक दिन राधा चिन्ता मग्न बैठी हुई थी, तो

पंडित जी ने उसे बुलाया। वह मन में झुंझलाती हुई उनके पास गई। एक लिफाफा हाथ में देते हुए उन्होंने कहा कि तेरे मामा ने भेजा है। अब अपने को गाँव चलना है। पत्र पढ़ते समय सबसे पहले उसकी दृष्टि वहाँ गई जहाँ उसके विवाह की बात थी। यदि वह रामू से प्रेम न करती तो उसके लिये यह असीम आनन्द की बात होती; परन्तु यह समाचार उसे इतना दुःखदायी प्रतीत हुवा कि लज्जा छोड़ अपनी विवशता पर वह रोने लगी।

पंडित जी सोच रहे थे कि लड़का ठीक कर लिया है। जल्दी जाकर शुभ मुहूर्त में विवाह कर देना चाहिये। आगे जो भाग्य में बदा है सो होकर रहेगा। राधा का रोना देखकर वे समझने लगे कि यह सोच रही है कि यदि आज मेरी माँ होती। उनका भी जी भर आया और राधा सम्हलकर पिता के आँसू पोंछने लगी।

भोजनोपरान्त कुछ इधर उधर की बातें होने लगीं, उस समय राधा ने कहा, "काका, मैं एक बात कहूं, तुम नाराज तो न होगे।"

"नहीं बिटिया।"

"मेरी सौं ?"

"मैं कह न रहा हूँ। क्या कभी तुम पर नाराज हुवा हूं ?"

"अच्छा काका, तो मैं विवाह नहीं करूंगी।"

"हैं !! ऐसा भी कहीं होता है। कभी लड़कियाँ भी कुंवारी रह सकती हैं ? ऐसा तो शास्त्र में भी नहीं लिखा।"

"तो क्या लिखा है कि लड़की की मरजी के बिना ही विवाह कर दिया जाय ?"

"ऐसा तो नहीं लिखा है।"

"तो क्या आजकल जितने विवाह होते हैं, वे सब लड़के लड़कियों की मरजी से होते हैं ?"

"लड़कियों की तो कोई मरजी होती नहीं रहती। माता पिता ही सदा से उनका विवाह करते आये हैं। पुराने जमाने में भी ऐसा ही होता था। हाँ, पुराणों के जमाने में मरजी का प्रश्न था और स्वयम्वर से विवाह हुवा करते थे। उस समय आठ तरह के विवाह युक्त माने गये थे; परन्तु आजकल कलियुग है, यदि वह प्रथा रहती तो बड़ा अनर्थ हो जाता। वर्णशंकर सन्तान उत्पन्न होती। तू देखती नहीं आजकल शहरों में कितना अनर्थ हो रहा है।"

"इससे मुझे क्या मतलब ? मैंने निश्चय कर लिया है कि विवाह नहीं करूंगी।"

"क्या स्वयम्वर का अधिकार मिलने पर भी," यह बात पंडित जी के मुंह से निकल तो गई; पर सहसा कई बातों को सोचकर उन्हें पछताना हुवा।

"मैं ससुराल चली जाऊंगी तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा।

मेरी जगह बेटा होता तो शायद उसकी इच्छानुसार क्वारा रखने में तुम न हिचकिचाते, पर लड़कियों को समाज ने यह भी अधिकार नहीं दिया।"

किसी भावी आशंका से पंडित जी सिहर उठे और आँखें बन्द कर चुपचाप बैठ गये।

+ × × ×

रामू जब गाय के बछड़े को लेकर खिलाने लगा तो राधा से न रहा गया। वह भी मकान के पिछले हिस्से में जा कहने लगी, "रामू, कैसा सुन्दर है।"

"कौन सें ?"

"उंह, क्या दुनियाँ में तू ही एक है और कोई दूसरा नहीं ?"

"हैं क्यों नहीं।"

"कौन ?"

"तू।"

"अब वे दिन गये। इस तरह की हँसी ठीक नहीं। यदि कोई सुन ले तो !!"

"हूं।"

"नाराज हो गये रामू ।"

"नहीं तो।"

"बोले कैसे नहीं ?"

"यों ही।"

"नहीं तुम्हें मेरी कसम।"

"बचपन के मुझे वे दिन याद आते हैं जब हम में कोई भेद-भाव न था और आज तू ज़रा-सी बात पर नाराज़ हो गई।"

"रामू मेरे हृदय से पूछ कि क्या बीतती है," यह कहते-कहते राधा का गला भर आया।

"तो क्या मैं ही निर्मोही हूं?"

"रामू कभी हम दोनों एक हो सकेंगे?"

"राधा!!" इतना कह रामू रोने लगा और राधा उसके पास पहुंच आँसू पोंछने लगी। यह नहीं कहा जा सकता कि कब और कैसे उनके ओंठ मिल गये। बछड़ा इधर उधर उछलता हुवा उन्हीं पर जा गिरा तो उन्हें होश आया। दोनों संकुचित, पर खुश थे।

× × × × ×

रामू के पिता को जब मालूम हुआ कि पंडित जी स्टेशन जायँगे तो रामू को गाड़ी देकर भेज दिया और ताकीद कर दी कि चौकन्ना पहुंचा आना। गाड़ी में सामान जंचाया जा रहा था। राधा रो रही थी। पंडित जी लोगों से मिलने में व्यस्त थे। रामू बैलों को चारा चरा रहा था। जब सब ठीक हो गया, तो पंडित जी और राधा जाकर गाड़ी में बैठ गये। रामू पैदल ही बैलों को हाँक रहा था। राधा और रामू की नज़र मिलती और नीची हो जाती। दोनों ही के हृदय में उथल-पुथल मच रही थी। भिक्षा की नज़र से देखता रामू और पके दाता की नज़र से राधा। पंडित जी कभी राधा से तो कभी रामू से बातें करते और राहगीरों

की राम-राम का उत्तर देते हुये कुछ उपदेश देते जाते। स्टेशन करीब आ गया और वे जाकर पास ही की धर्मशाला में ठहर गये। समय बहुत था। दूसरे दिन को दस पैंतीस की गाड़ी से जाना था। रात सामने थी। अतः यजमानों से कुछ भेंट पाने की आशा से पंडित जी शहर में चले गये।

इधर ये दोनों विषएण हृदय से विचार कर रहे थे, कि निकल भागा जाय, या परिडत जी को साफ़ २ कह दिया जाय, या जहर खा लिया जाय। पर दोनों एक मत नहीं हो पाते थे। इतने में पास से शोर गुल सुनाई दिया। हज़ारों की भीड़ काले झण्डे लिये स्टेशन की ओर उमड़ती हुई दिखाई पड़ी। भीड़ से रामू केवल इतना ही जान सका कि वहाँ से कोई बड़ा अधिकारी गुज़र रहा है। जनता को अधिकार मिलने के बदले उनके छीने जाने की सम्भावना है। यह बताने को कि स्वतंत्रता पाने पर जनता कितनी तुली हुई है और उस अधिकारी के प्रति विरोध प्रदर्शन करने वे लोग स्टेशन जा रहे हैं।

कभी-कभी समाचार-पत्रों द्वारा राधा और रामू थोड़ी बहुत राजनैं परिस्थिति जान लिया करते थे। उस असीम जन-उत्साह देख उनकी आत्मा में एक अद्भुत बिजली सी दौड़ गई। वे पने आपको भूल गये।

उधर सशस्त्र और घुड़-सवार पुलिस भीड़ को आगे बढ़ने से रोक रही थी। गाड़ी स्टेशन पर पहुंच चुकी थी। लोग चिल्ला

रहे थे, "गोल्याक", "भारत माता की जय," और लाठियाँ बरसने लगीं। कायर भागने लगे। वीरों का उत्साह बढ़ा। सिर फूट रहे थे और हाथ पैर टूट रहे थे। कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। प्रजा के स्वाभिमान का प्रश्न उपस्थित था। राधा ने रामू का मुँह देखा और रामू ने राधा का, दोनों ने आँखों ही आँखों से निर्णय कर लिया।

राधा रामू अस्पताल में निष्प्राण पड़े थे। बाहर भीड़ चिल्ला रही थी, "वन्दे मातरम्", 'भारत माता की जय।"

लोग आपस में बातें कर रहे थे कि कैसा देश प्रेम है? दोनों धर्मशाला से निकलकर काले झण्डे उठा स्टेशन की ओर दौड़े। वे क्या कह रहे थे सो नहीं मालूम; पर भीड़ वापिस उमड़ पड़ी। दनादन गोलियों की आवाज़ सुनाई पड़ी। कई घायल हुये, पर वे दोनों काम आये।

रात भर पंडित जी पागल से हुये फिर रहे थे। सुबह उन्हें दोनों की लाशें मिलीं। जिस गाड़ी से वे जाना चाहते थे, उस ही समय उन्हें पुत्री और शिष्य के जनाज़े के साथ जाना पड़ा।

उस गाँव के लोग जब कभी शहर आते हैं तो शहीद स्मारक पर अवश्य माथा नवा जाते हैं। शहीद दिवस पर तो सारा गाँव वहाँ आता है।

× × × ×

कभी २ लोग यह गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न करते हैं कि यह कौनसा प्रेम था?

परिवर्तन

मोहन के पिता साधारण स्थिति के गृहस्थ थे। वे उन्हीं लोगों में से थे जो रोज कमाते और रोज ही खर्च कर देते हैं। उन्हें न संग्रह करने की चाह थी, न भविष्य की इच्छा, जो कुछ लाते उसी से किसी तरह घर का खर्च चलाते थे। मोहन जब निरा बालक ही था, उस समय उसकी माता का देहान्त हो गया था। इस कारण उसका एक मात्र सहारा केवल उसके पिता ही थे।

मोहन के पिता से लोगों ने दूसरा विवाह करने के लिये बहुत कुछ कहा पर वे किसी तरह भी राजी नहीं हुये। उनका कहना था कि अपने इस दिखावटी सुख के लिये निर्बोध बालक के जीवन को दुःखमय क्यों बनाऊं? न जाने वह कैसी और

क्या आवे ? यह भी तो कोई निश्चित नहीं कि मेरी इस ढलती जवानी में वह नवयुवती मुझे सुख ही पहुँचा सकेगी।

मोहन अपने हम-जोलियों के साथ सुख से जीवन व्यतीत करने लगा। मां के अभाव में इकलौते बेटे मोहन पर पिता का स्नेह बहुत ही अधिक रहता था। अतः वह उपद्रवी स्वभाव का नटखट लड़का बन गया। दूसरों की हड्डी पसलियों को ठीक करते उसे तनिक भी सङ्कोच नहीं होता। दौड़-धूप, मार-पीट, उछल-कूद में उसे बड़ा आनन्द आता और वह कई चोटें भी खा जाता।

जब वह एक दिन ऊधम मचा रहा था, तो उसके साथी किसी विषय पर बहस कर रहे थे। वह भी खड़ा हो सुनने लगा तो उनमें से एक ने तिरस्कार-पूर्वक कहा, "क्यों दिमाग को ज़ोर दे रहा है ? तू क्या समझे ? तू तो निरा बुद्धू है। पहले पढ़ आ फिर हमारी बातों की ओर ध्यान देना।"

मोहन की आत्मा को ठेस पहुँची। पढ़ना शुरू कर दिया। इतना पढ़ा कि पचीसवें वर्ष में बी० ए० पास करली। मेट्रिक पास करने के उपरान्त ही उसे मालूम हो गया था कि पिता जी के पास तो कौड़ी भी नहीं है। कालेज में भर्ती होने के बाद प्रिन्सिपल से उसने अपनी राम कहानी कह सुनाई। उन्होंने एक दो ट्यूशन लगवा कर उसके जीवन निर्वाह का रास्ता निकाल

दिया। धीरे २ वे इतने प्रभावित हुये कि मोहन से उनकी काफी घनिष्ठता हो गई।

पढ़ाई समाप्त करने के पांच वर्ष पहिले मोहन का विवाह भी हो गया था। अध्ययन में वह इतना मेहनती था कि उसकी स्त्री का नौकरी के लिये बार २ जोर देने पर भी उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं रात्रि को कुछ थोड़ा बहुत समय निकाल कर उसने अपनी स्त्री को भी पढ़ाया।

एक दिन मोहन की स्त्री ने फिर कहा, "श्वसुरजी बहुत वृद्ध हो गये हैं। घर का काम काज चलना मुश्किल हो गया है। बिना नौकरी के काम कैसे चलेगा?"

प्रिन्सिपल ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जहां कि उसकी पूरी पहुँच थी। उनकी दौड़-धूप से एक रियासत में मोहन को डिप्टी सुपरिंटेंडेन्ट पुलिस की नौकरी मिल गई। मोहन की कार्य क्षमता को देख कर थोड़े ही दिनों में स्टेट कौंसिल ने उसे ढ़ाई सौ के ग्रेड पर सुपरिन्टेन्डेन्ट बना दिया।

घर में कुछ दिन चैन की बंशी। मोहन के बूढ़े पिता अपने बेटे की उन्नति की खबर करने उसकी मां के पास चले गये और उनका स्थूल शरीर यहीं रह गया।

जिस रियासत में मोहन नौकरी करता था, वहां भी ब्रिटिश भारत की हवा लगी और कुछ युवकों को प्रजा सङ्गठन की

सूझी। मीटिङ्ग होतीं, व्याख्यान होते और जगह २ स्टेट कांग्रेस की शाखायें खुलने लगीं। शासक अपने रंग में मस्त थे। विदेशी मन्त्री रियासत में मनमानी कर रहा था। जनता में त्राहि २ मची हुई थी। मन्त्री महोदय को इन उजड्ड मच्छरों का भिन-भिनाना अच्छा नहीं लगा।

× + × ×

कौंसिल के कानून के विरुद्ध स्टेट कांग्रेस ने सत्याग्रह जारी कर दिया। खुले आम कानून तोड़ा जाने लगा। गिरफ्तारियां, लाठी चार्ज तो दैनिक घटनायें हो गईं। घायलों से अस्पताल भर गये और सरकारी जेल में जगह न रही!

मोहन को भी यह सब दिल से पसन्द न था और फिर साहब का हुक्म—उसने मनमानी मुराद पाली। अपने उपद्रवी स्वभाव को एक बार फिर अपना लिया। रात दिन परिश्रम कर उसने सारी रियासत में पुलिस का फौलादी पंजा फैला दिया। सी० आई० डी० का जाल बिछा दिया। कांग्रेसियों की एक-एक खबर उससे छिपी न रहती; परन्तु जब वह किसी को गिरफ्तार करने, सत्याग्रह के दफ्तर पर छापा मारने या गैर कानूनी साहित्य को जब्त करने का—पक्का विश्वास कर निकलता कि उसे सफलता मिलेगी, तो वह हैरान हो जाता कि जो भी खबर उसे मिली थी, गलत थी। जिस मकान में सत्याग्रह का आफिस

होना सवा सोलह आने सही था, वहां पहुँचने पर वह मकान उसे खाली मिलता और उसे बैरंग ही वापिस लौटना पड़ता। मोहन को जिन २ पुलिस वालों पर कांग्रेस के प्रति सहानुभूति होने का शक था, उसने उन्हें निकलवा ही नहीं दिया वरन बन्दी भी बना लिया, परन्तु फिर भी पुलिस की गुप्त से गुप्त खबर कांग्रेस के पास चली जाती। मोहन ने ज़ोरों से दमन किया। छोटे २ बच्चों तक पर लाठियां बर्षाईं, पर आन्दोलन बढ़ता ही गया।

हजारों की संख्या में लोग जमा थे। राष्ट्रीय नारों से आकाश गूंज रहा था। मोहन ने जिन गुप्तचरों को भीड़ में भेजा था वे अपना कार्य कर रहे थे। उपद्रव मचाने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु असफल रहे। मोहन ने पन्द्रह मिनिट में सभा भंग होने का हुक्म दिया। लोग नारे लगाने लगे। नेता शान्ति-शान्ति पुकार रहे थे। इतने में भीड़ में से किसी ने मोहन पर एक पत्थर फेंक दिया। रक्षार्थ भीड़ को तितर-बितर करना आवश्यक समझ उसने एक महान उपद्रव खड़ा कर दिया।

लाठियां चलने लगी। अनगिनत अङ्ग भङ्ग हो गये और वस्त्र खून से रंग गये। मोहन ने देखा भीड़ भाग रही है। वह नेताओं को गिरफ्तार करने की सोच ही रहा था कि एक उन्नीस वर्षीय बालक "वन्देमातरम्" के नारे लगाते हुये, उसके सामने आ

डटा । उसने मोहन से लाठी चलाने को कहा । भागती हुई भीड़ ने गर्दन फेरी और देखा एक अपूर्व साहस । उसमें भी पुरुषत्व चेत गया और लौट कर वह जम कर बैठ गई । मोहन झल्लाया । जीता जिताया प्लेटफार्म फिर हाथ से निकल गया । उसका मूल कारण उस बालक को जान स्वयं उसने उस पर लाठी चलाई । सिर फट गया और जमीन पर तड़फता हुआ बालक "वन्दे-मातरम्" बोल रहा था । उस बालक की आंखों की अलौकिक ज्योति देख मोहन पागल सा हो भाग गया । ऐन मौके पर सशस्त्र पुलिस ले आ० ई० जी० पी० आ पहुँचा । नेताओं के साथ कई सौ आदमी पकड़ लिए गये ।

\+ \+ \+ \+

संध्या समय सारे शहर में शून्य का दौर-दौरा था । हां, चील और कौओं के सिवाय पुलिस और फौजी सिपाही कहीं २ दिखाई दे जाते थे ।

तीन वर्ष व्यतीत हो गये । मोहन का कहीं पता न था । लोग कहते थे कि इस्तीफा देकर उसने आत्महत्या करली । कोई कुछ कहता और कोई कुछ—जितने मुंह उतनी बातें । कभी २ तो लोग उसकी पुरानी बातें याद कर दो गालियां निकाल देते ।

रियासत की प्रजा उसे भूल गई । शासन के सारे अधिकार जनता के हाथ में आ गये । रियासत में एक बड़ा भारी दल

खड़ा हो गया। हरे रंग की पोशाक से सुसज्जित वह दल सामाजिक संकीर्णता से बहुत परे था। घर घर गांव-गांव में उसके सदस्य थे। जनता पर अत्याचार करने वालों की जागीरें छिन गईं थीं। समानता और सहयोग से समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

किसान और मजदूरों को भरपेट अन्न मिलने लगा। ग्राम साफ सुथरे दिखाई पड़ने लगे। बिमारियां कम हो गईं। हर ग्राम में स्कूल खुल गए। ग्रामीण प्रसन्न मुख दिखाई देने लगे और लहलाते हुए खेतों को देखकर तबियत हरी हो जाती।

उन्नीस वर्ष का बालक चन्द्रसेन, जिसका कि सिर आन्दोलन में फट गया था, एक बाईस वर्ष का युवक हो गया। अपने कुछ साथियों के साथ वह गुरू के स्थान पर पहुँचा। माताजी को प्रणाम कर गुरू के पास जा बैठा।

"चन्द्रसेन, यहां का कार्य मैं समाप्त कर चुका। सारे राजस्थान में अब मैं कार्य करूंगा। जाने से पहले मैं तुम्हें एक रहस्य बताना चाहता हूँ और मेरे अपराध..............."

गुरू आगे कुछ न कह सके। उनका गला रुंध गया और आंसू न रुक सके। फिर शान्त हो सारी कथा कह सुनाई। चन्द्रसेन गुरू की ओर आंखें फाड़ २ कर देख रहा था और अपने सिर के दाग टटोल रहा था।

दस वर्ष बाद राजपूताने के प्रसिद्ध शहर में एक सभा की जा रही थी लाखों जनता साथ थी। लोग कह रहे थे कि मोहन क्या से क्या हो गये। उन्हीं के उद्योग के फलस्वरूप राजस्थान में हमारी पार्टी राज्य कर रही है और चन्द्रसेन प्रेसिडेन्ट है।

राजपूताना के उस प्रसिद्ध शहर में एक मूर्ति धूप, आँधी, वर्षा, सर्दी, गर्मी सहती हुई बीच बाजार में खड़ी है और बता रही है कि यह है परिवर्तन..............।

—वेङ्कटेश पारीक

द्रोही

एक ऐसा मनुष्य था जो देखने में काला, लम्बा और पतला था। उसके फटे हुये कपड़े भी इतने गन्दे थे जो करीब २ उसके रंग से मिल गये थे। उसकी आंखें ऐसी चमकीली थीं जैसे बिल्ली की। चेहरे से यही भाव प्रतीत हो रहा था कि उसकी आत्मा में कोई असीम दर्द है और और वह अपने आप को भूला हुआ है। उसके दुःख भरे मुख को देख ऐसा कोई बिरला ही पुरुष होगा, जो उसकी ओर न खिंचता। पहाड़ की चोटी पर कोई दो सौ गजलम्बी और पच्चीस गज चौड़ी समतल भूमि है और वह उसी पर घूम रहा है।

सहसा वहां उसकी एक अद्भुत व्यक्ति से मुठभेड़ हुई। उस

पं० हरिप्रसाद जी शर्मा

अद्भुत व्यक्ति ने एक भी शब्द उच्चारण नहीं किया, परन्तु उसके मनोभाव को जानकर वह दुबला, पतला काला मनुष्य अपने आप बड़बड़ाने लगा, "दस वर्ष तक मैंने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा। मारे दुःख के अपनी इस कलंकित आत्मा को छिपाये जंगलों और पर्वतों में विचारा, सोचा कि आत्म-हत्या करलूँ और अन्त में इसी निर्णय को पहुंचा। फाँसी पर लटक कर जीवन का अन्त करना ही चाहता था कि आवाज आई कि यदि ऐसा करोगे तो आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कभी मुझ में स्मरण शक्ति थी ही नहीं। विचार सागर की लहरों में गोते लगाने लगा; कभी इधर और कभी उधर, परन्तु किसी निर्णय को न पहुंच सका। नींद आगई प्रातः काल उठा तो बार बार मनको धिक्कार ने लगा। अरे ? एक दिन तू क्या था ? कितने अनर्थ किये अपने स्वार्थ के लिये ? भले आदमियों को लटकवा दिया फांसी पर और कितनों ही को भिजवा दिया उम्र कैद। अब अपने हाथों से बच्चे, स्त्री, माता, धन, वैभव सब को नष्ट कर डाला। कितने साहसी और वीर थे ! वे पुरुष देश के लिये अपने बिलबिलाते हुये दुध मुंहे बच्चों तक की पर्वाह नहीं की। मैं था इतना नीच कि धन के लोभ में आकर अपनी संस्था के गुप्त रहस्य को शत्रुओं की भेंट कर आया। अरे धन, अरी नीचता को कमाई,

तुझे धिक्कार ! तेरे ही कारण हम अपने पथ से विचलित हो जाते हैं और अपने भाई तक का गला काटते हैं ।

"संसार मेरे मुंह पर थूकता है । उन शहीदों के परिवार मेरा नाम ले ले कर अपने भाग्य को कोसते हैं । मैं कृतघ्न, अन्यायी और दुराचारी हूँ । संसार मुझे जितना दुतकारे तिरष्कार करे, उतना ही कम है । यदि एक वार उस राष्ट्र-केशरी के दर्शन हो जाते तो अपने अपराधों को उससे क्षमा मांगता.........
पर............."

उस अद्‌भुत व्यक्ति के मुंह से केवल इतने ही शब्द निकले "समझ में नहीं आती तुम्हारी बात, यदि कह सको तो आदि से अन्त तक साफ २ कहो ।"

"मेरा नाम—क्या करोगे जानकर मेरा नाम ? संस्था थी-एक, प्रगतिशील जो समाज को मानवता के उच्चतम शिखर पर लेजाती और उसके एक मात्र प्राण थे राष्ट्र केसरी । हां, उनके दो नाम थे । एक तो मैं बतला ही चुका हूँ और दूसरा जिससे कि उन्हें संसार जानता था, वह था जगत-सेठ लाला श्यामलाल । लाला श्यामलाल को तो सबने देखा था; पर राष्ट्र केसरी जिसके कि नाम की लोग पूजा करते थे किसी ने भी नहीं देखा । संस्था का उद्देश्य था दूसरों की अनुचित सत्ता को जड़ोमूल से नष्ट करने का, चाहे उसके सदस्यों को अपना सर्वस्व स्वाहा करना

पड़े यदि आज वे होते तो स्वतंत्रता की लहर में राष्ट्र फलता और फूलता। मैं उनके घर भी गया पता भी लगाया; परन्तु मालूम हुआ कि उन्हें गायब हुये दस वर्ष हो गये हैं। ऐसी महान गुप्त संस्था का मैं भी एक सदस्य था।

"यह जानना चाहते हो कि मैं विश्वासघाती कैसे बना? मेरा चचेरा भाई गुप्तचर था। उसे कुछ २ शक था कि मैं उस गुप्त संस्था का सदस्य हूँ जिसके कि नाम से बाहरी अधिकारियों की नींद हवा हो जाती है। वह मुझे लुभाने का प्रयत्न करने लगा।

"उधर हमारी संस्था में यह प्रस्ताव पास हो चुका था कि बाहरी अत्याचारी अधिकारियों को पकड़ २ कर कैद कर दिया जाय। जनता में वह शक्ति भरदी जाय कि स्वतंत्रता के लिये वह अपना सर्वस्व अर्पण करदे। पहाड़ों की गुफायें, खंडहरों के भीतर सुरक्षित स्थान हमने ठीक कर लिये थे, जहाँ कि कुकर्मी बन्दी रक्खे जा सकें, राष्ट्र में प्रत्येक शहर की संस्था के सदस्यों ने धर पकड़ प्रारम्भ करदी। दुराचारी, फौज के कड़े पहरों में सोने का प्रयत्न करते; परन्तु फिर भी गायब हो जाते। जनता को ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके सुख के दिन आ गये हैं और वह भी प्राणपण से सहायता देने लगी।

"परन्तु वह निरा स्वप्न था। मेरे घर में खाने को अन्न

नहीं था। मेरा सब से छोटा बच्चा मरणासन्न पड़ा हुआ था। स्त्री कातर-दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। घर में त्राहि २ मची हुई थी। सारा दृश्य मेरे लिये असह्य हो उठा। हृदय में उथल पुथल मच गई। उस समय मेरा चचेरा भाई आ - पहुंचा और उसका तीर ठीक निशाने पर बैठ गया। उसने आते ही कहा कि तुम कितने नीच और कायर हो। तनिक अपनी चारों ओर दृष्टि तो उठाकर देखो और देखो अपनी करनी का फल। इन आत्माओं का सत्यानाश करने से तुम्हें क्या मिलेगा ? क्या इनकी आहों के उपरान्त तुम्हारा उद्देश्य सफल हो सकेगा ? पहले इनको सुखी करो फिर आगे बढ़ना। तुम्हारे बूढ़े मां-बाप दो चार दिन में भूख के मारे मर जांयगे। यह सारा दुःख एक क्षण में आनन्द में परिवर्तित हो सकता है। सारी बाधाऐं दूर हो जीवन सदा के लिये सुख-मय बन सकता है। केवल तुम्हारी उस गुप्त संस्था.........
इतना कहने के उपरान्त उसने मेरी ओर घूर कर देखा। मेरी आंखें वह कह गई जो शब्द नहीं कह सकते !!

"दूसरे दिन प्रातःकाल अशर्फियों की थैलियों से मेरा घर भर गया ! उनको देख कर मेरी अन्तरात्मा सिहर उठी। मैं कठपुतली की भांति शून्य हो गया। मेरा चचेरा भाई मुझे अत्याचारियों के सर्वोच्च अधिकारी के पास ले गया। वहां

पहुँच कर मैंने उस महान संस्था के सारे रहस्य को खोल दिया। वहाँ खुली हुई खिड़की के पास मैं बैठा था। मैं अपना कार्य पूरा भी न कर पाया था कि राष्ट्र केसरी वहाँ आ पहुँचा। धमाके की आवाज हुई। मैं तो खिड़की से बाहर गली में था और वह उस सर्वोच्च अधिकारी को ले गायब हो गया। उसका पीछा भी किया गया परन्तु सारी चेष्टायें निष्फल रहीं। दूसरे अधिकारी संस्था के सारे रहस्य को जान चुके थे।

"खिड़की से गिरने के कारण मुझे गहरी चोट आई थी। तीन दिन बाद जब मुझे होश हुआ तो मालूम हुआ कि राष्ट्र के प्रत्येक शहर में अधिकतर हमारी संस्था के सदस्य चुन-चुन कर पकड़ लिये गये हैं। बहुतों को तो आ जन्म कैद और बाकी को फांसी दे दी गई है। अब मैं सदा जलता हूँ और सोचा करता हूँ कि वे लाखों मातायें, स्त्रियां और बच्चे !!!"

अपनी कहानी समाप्त कर वह उस अद्भुत व्यक्ति की ओर देख रहा था और उस अद्भुत व्यक्ति ने कहना ही प्रारम्भ किया था, "सदस्य मारे जाये पर अमर उद्देश्य और···संस्था······।"

वाक्य पूरा भी न होने पाया था कि न जाने उस काले मनुष्य ने उस अद्भुत व्यक्ति की आँखों में क्या देखा कि वह चीख उठा, "आप !! मैं द्रोही हूँ !!!" यह कहता हुआ वह बेतहाशा दौड़ा। भागने के सिवाय उसकी सारी शक्तियां लोप

हो गईं थीं।

वह अद्भुत व्यक्ति पुकार रहा था, "ठहरो, सुनो, तुम अब भी बहुत कुछ कर सकते हो। मुझ से न डरो। अरे! सामने अथाह खाई है!!"

परन्तु सुनने वाला कौन था? खाई के पास चट्टान से टकरा कर उसका सिर फट गया था और उस अन्धकूप में उसका शरीर सदा के लिये लोप हो गया।

—हरीप्रसाद शर्मा

मोती और गुलनार

मोती एक मारवाड़ी का ब्राह्मण का लड़का है; परन्तु बचपन के प्रारम्भ से किशोरावस्था के अन्त तक उसका समय ब्रह्मपुत्र के किनारे आसाम के किसी बड़े शहर में बीता। उसके माता-पिता जब वह निरा बच्चा ही था, वहाँ जा कर बस गए थे। उनकी आमदनी अच्छी थी और मोती उनकी एक मात्र सन्तान था। वे उसे हर भाँति प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते। उनकी देख-रेख में मोती केवल सुन्दर, हँसमुख और चंचल ही नहीं बन गया; परंतु उसकी प्रतिभा का पूरा विकास होने का भी अवसर मिल गया। अपनी रूढ़ि और परिपाटियों को छोड़ वे उसे पूर्ण स्वतंत्रता देने में सहमत थे।

एक दिन जब वह स्कूल से लौट रहा था तो क्या देखता है कि ताँगे में जुता हुआ एक घोड़ा बिना किसी हाँकने वाले के विद्युत-गति से सड़क के बीचों बीच भागता चला आरहा है। गुत्थी पड़ी हुई रास ज्यों ज्यों उसके पैरों में अटकती त्यों त्यों वह उछलता था। और उसके मुंह से झाग निकल रहे थे। और तो और, उसी क्षण वह क्या देखता है, कि जिधर वह घोड़ा आरहा था उधर कुछ ही गज दूर, एक लड़की दब जाने के भय से मुंह ढाँपे चीख रही है। उसने आव देखा न ताव दौड़ कर अपना पुस्तकों वाला बंडल उस घोड़े के मुंह पर दे मारा। झपट कर उस लड़की को ऐसा धक्का दिया कि वह भी कई गज दूर जा गिरी। घोड़ा उछला और ताँगा उलट गया। उलटने के कारण ताँगा चूर २ हो गया, घोड़ा भी शान्त हो गया। जब घोड़ा उछला था तब उसकी लात ऐसी पड़ी कि मोती का बाँया हाथ टूट गया। धक्के के कारण वह लड़की किसी ऐसी चीज से टकराई कि उसके गले पर आध इंच गहरा घाव हो गया।

घटना का वर्णन करने में तो इतना समय लग गया; परन्तु ये सारी बातें कुछ ही क्षणों में हो गईं। उसके उपरान्त तो घटना-स्थल पर खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। अधिकतर लोग तो मोती की बड़ाई का पुल बाँधने में लगे हुये थे; परन्तु एक दो सवारी का प्रबन्ध करने के लिए भी दौड़े। इतने में एक मोटर आगई और

उसमें से एक सज्जन ने उतर कर उन दोनों को अस्पताल पहुंचाने का प्रबन्ध कर दिया।

अस्पताल में ही मोती को पता लग गया कि उस लड़की का नाम गुलनार है और वह एक उच्च मुस्लिम घराने की है। धीरे-धीरे दोनों स्वस्थ्य हो गये और वहीं दोनों की जान पहिचान भी हो गई।

गुलनार के गृह में मोती के लिए कोई रुकावट नहीं थी। दोनों खेलते, कूदते, लड़ते, झगड़ते और पढ़ते भी। उनके जीवन में किसी बन्धन का आभास होने लगा था; परन्तु तब तक उसमें कोई गहराई न थी। मोती मैट्रिक पास हो गया और सारे प्रांत में उसका तीसरा नम्बर रहा। उस समय गुलनार भी मिडिल पास हो गई।

एक दिन संध्या समय जब उनकी आंखें चार हुई तो जीवन की सारी कहानी का निर्णय उस ही क्षण हो गया। वे अटूट बन्धन में बंध गये। उस समय से उनके मिलन में झकझाहट, वार्तालाप में रुकावट और व्यवहार में एक अद्भुत परिवर्तन हो गया।

ब्रह्मपुत्र की रेती में मोती और गुलनार टहल रहे थे। दोनों चुप थे। उनकी चिन्तामग्न आत्माएँ किसी गुत्थी को सुलझाने में लगी हुई थी। उस नीरवता को भंग करते हुए सहसा गुलनार बोल उठी, "यदि सदा के लिए हम अपना संम्बन्ध विच्छेद कर

लेते हैं तो जीवन असंभव बन जायगा। इस समय अपने आप को मिटा देने में तो प्रश्न केवल दो ही आत्माओं का है; मगर यदि हमारी शादियाँ हो जाती हैं तो चार जानें बर्बाद होंगी। समझ में नहीं आता जिन्दगी क्या है? क्यों न हम दुनियाँ के सामने असलियत को जाहिर करदें?"

"सोचा है कुछ तुमने समाज के बारे में" धीरे से मोती ने कहा

"ओह रे समाज के गुलाम —तुम्हारी ही जबानी तुम्हारे समाज की पुरानी कहानी—जहाँ हजारों ब्राह्मणियाँ विधवा होकर कलकत्ते और बम्बई में सेठों के सामने हाथ पसारती हैं। कहती मैं बेवा हूं। क्या करूं? कहां जाऊँ? सीधे तरीके से कमाने का उनके पास कोई जरिया नहीं है। सेठानियों के मेंहदी लगाती हैं, उनके और उनके बच्चों के गन्दे कपड़े धोती हैं और व्यभिचार कराती हैं। इन सबके बदले में मिलता है क्या? तिरष्कार बस, पेट भर रोटियाँ और पूरा सा तन ढकने को कपड़ा भी मयस्सर नहीं होता। हर साल हजारों भ्रूण हत्यायें होती हैं। उनके बच्चे पटरियों पर आने जाने वालों से भीख माँगते फिरते हैं। यह है तुम्हारा समाज!! तुम्हारी हालत कुत्तों से भी गई गुजरी है कि ठुकराए जाने पर भी फिर माँगते हो। मोती मैंने तुम्हारा दिल तो नहीं दुखा दिया? अगर यह बात है तो माफ करो। जरा मेरी ओर देखो और मेरे दिल को पहिचानो।"

मोती ने उसकी ओर देखा और देखी उसकी आँखों में प्रेम की धधकती हुई ज्वाला। वह उसकी ओर मंत्र मुग्ध सा देखता रहा और अन्त में उसके मुंह से निकल पड़ा, "गुलनार तू और मैं तो एक हैं।"

वे दोनों कभी न कभी प्रति दिन ही मिल लिया करते थे। उनके मिलन में क्या अद्भुत मिठास और अनुपम सुख था, सो वेही अनुभव कर सकते थे। एक दिन दोनों ने निश्चय किया कि अपने माता पिताओं से अन्तिम निर्णय करा लेना चाहिए।

गुलनार ने अपने पिता से जब सारी कहानी कह सुनाई तब वे दिल में तो समझ गये थे कि मामला काबू से बाहर है; परन्तु बनावटी क्रोध दिखा कर बोले, "लौंडी, जरा दिमाग को ठिकाने पर ला। तू जिस मुहब्बत का बखान कर रही है वह टिकने वाली चीज नहीं। बेवकूफी मेरी ही थी जो इतनी आगे बढ़ने दी। जरा खान-दान की तरफ तो गौर कर। तू है इस्लाम की बच्ची और वह है काफिर। उसने तेरी जान बचाई थी इस लिए पाक नीयत से मैंने उसे आने दिया। मेरे पास किसी बात की कमी नहीं है, मैं हर तरह से उसकी मदद कर सकता हूँ; मगर गैर मुमकिन बात नहीं हो सकती।"

"अब्बा, जरा इस अपनी बच्ची की तरफ देखो। तुम उसकी जिन्दगी तो कभी बर्बाद न करना चाहोगे।"

बूढ़े खाँ साहब चुप हो गये। वे जान गये कि इस जीवन की पहेली को हल करना उनकी शक्ति के बाहर है।

जब सारी बात मोती के पिता को मालूम हुई तो वहाँ दूसरा ही गुल खिला। मंत्र, तंत्र, जादू-टोने में उनका दृढ़ विश्वास था। यह बात उनके दिल में पक्की तौर से बैठ गई कि उस मुस्लिम लड़की ने मेरे बच्चे पर जादू करवा दिया है। कामरूप देश की वे अद्भुत कहानियाँ कई बार सुन चुके थे और वह था भी पास में। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि किसी सिद्धहस्त पंडित को बुला कर सब ठीक कर लेना चाहिए।

एक दिन साँझ को जब मोती घूम फिर कर लौटा तो क्या देखता है कि उसके पिता के पास एक मोटी सी तोंद और छोटे से सिर वाले महाशय जबरदस्त साफा बाँधे, और एक सौ ग्यारह नम्बर का ट्रेड मार्क लगाए, अकड़ कर उसके पिता के पास बैठे हैं। वे सिर हिला कर धीरे धीरे दार्शनिक रीति से उसके पिता के कान में कुछ कह रहे थे।

मोती को देखकर उन्होंने कहा, "इधर आकर जरा अपना मुंह तो दिखाओ।"

मोती सोचने लगा, कैसा अजीब प्रश्न है और मन ही मन झुँझला कर बोला, "मैं तो आपके इतने पास हूँ कि मेरा मुंह आपको साफ साफ दिखाई देना चाहिए। क्या आपकी दृष्टि कमजोर है। ?"

वे सिर हिलाते हुये बोले, "ठीक है।"

इसके उपरान्त उन्होंने मोती के पिता को यही सलाह दी कि जादू इतना असर कर गया है कि लड़का कहीं पागल न हो जाय। सब से उत्तम तो यही होगा कि वे उसे मारवाड़ ले जाँय। उतनी दूर लेजाने पर और कुछ तॉत्रिक प्रबन्ध करवाने पर धीरे २ जादू का असर दूर हो जायगा। साथ ही साथ उन्होंने उन्होंने यह भी सलाह दी कि कोई उपयुक्त बालिका देखकर मोती का विवाह भी शीघ्र ही कर देना चाहिए। सुन्दर स्त्री को देख कर, उसका यहाँ का मोह कम हो जायगा। वह गृहस्थ जीवन में बँध जायगा। उन्होंने मोती के लिये मारवाड़ में अपनी भतीजी को ही सब से उत्तम बताया। वे जाने के पहले दो लठैतों का भी इन्तजाम कर गए जिसमे मोती कहीं गायब न हो जाय।

उन्हीं दो लठैतों की सहायता से उसके पिता उसे मारवाड़ ले गए। मोती हर तरह गिड़गिड़ाया कि अन्तिम बार उसे गुलनार से मिल लेने दिया जाय पर सुनने वाला कौन था? मारवाड़ पहुंच कर भी वे दोनों लठैत उसके पीछे छाया की भाँति लगे रहते। वह समझ गया कि इन अजेय शक्तियों से लड़ना व्यर्थ है। सो, जो कुछ भी उससे कहा जाता वह करने लगा। पिता समझने लगे कि धीरे धीरे इसका पा लपन दूर हो रहा है और उसे कुछ कुछ स्वतंत्रता मिलने लगी।

बालू नामी लड़के से मोती इतना हिलमिल गया कि उससे उसने सारी राम कहानी कह सुनाई। अधिक शिक्षित न होते हुए भी बालू आत्माओं के भावों को पहिचानता था। वह केवल इतना ही कर सकता था कि ढाढ़स बंधाए और हिम्मत न टूटने दे।

एक दिन जब दोनों मित्र रेती के टीले पर बैठे हुये थे, तब मोती बोल उठा, "जीवन कलंक बन गया है। चाहे अब पागलखाने ही जाना पड़े। तुम्हें मालूम ही होगा कि पास ही में देवास से, मिश्र जी के यहां से लोग मेरी सगाई करने आ रहे हैं। मेरा विवाह भी जबरन शीघ्र ही करवा दिया जायगा। जान पड़ता है कि गुलनार को अब न देख सकूंगा। जीवन का अन्त करदूंगा।"

"भाई हिम्मत से काम लो, निराश मत हो।" "तुम आशा और निराशा की बातें करते हो, सोचो इस समय गुलनार पर क्या बीत रही होगी ? उसके पिता खाँ साहब कहते होंगे, देख तू जिस काफिर के पीछे जान देती थी वही तुझे छोड़ कर भाग गया। उस समय गुलनार के मन में क्या क्या भाव उठते होंगे। कैसी है यह समस्या। यदि उस समय हम अपनी दोनों आत्माओं को लेकर गायब हो जाते तो काहे को यह प्रपंच खड़ा होता। मैं कल उसे अवश्य पत्र लिखूंगा। क्योंकि मेरी शादी होने वाली है!"

दोनों लठैत कुछ दूरी पर बैठे हुये थे, उनके कानों में गुलनार और शादी इन शब्दों की भनक पड़ गई। वे सोचने लगे कि

पागलपन का दौरा फिर आ रहा है और बालू भी इसमें सहायक है। मोती के पिता से उन्होंने इस बात को खूब बढ़ा चढ़ा कर कहा। उस समय मोती के पिता को केवल एक ही धुन सवार थी और वह थी, जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी मोती का विवाह करना। सो उन्होंने उस दिन बालू के घर कहलवा दिया कि वह मोती से कोई सम्पर्क न रखे।

× + × × ×

कई महीने बीत चुके हैं। मोती का विवाह हो गया है। वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ है। उसके शून्य चेहरे को देख कर उसके पिता भावी आशंका से आँखें मींच लेते हैं। इतने में मकान के भीतर किसी के आने की आहट सुनाई दी। सिर उठा कर देखा तो सामने बालू खड़ा है।

उसे देख कर वे बोले, "आओ बालू, देखो तो मेरी करनी का फल। यदि आज विवाह न करता तो केवल पुत्र शोक ही होता। वधू-वैधव्य का शोक तो न सहना पड़ता। यह जीवन की पहेली कुछ-कुछ अब मेरी समझ में आ रही है। गुलनार का क्या हाल होगा?"

"इसमें आपका कुछ दोष नहीं। दोष है संस्कारों और जर्जरित समाज का। आप लोगों को चाहिए कि आधुनिक युवकों को समझने का प्रयत्न करें। वे अनुचित बन्धनों को तोड़ कर आगे

बढ़ना चाहते हैं। यह तो बतलाइए, डाक्टर मोती को कौन सी बीमारी बतलाते हैं ?"

"क्या वैद्य, क्या डाक्टर, सब के सब हैरान हैं। कोई इसकी बीमारी का पता नहीं लगा सकता।"

इतने में मोती ने आँखें खोली और धीरे से कहा, "बालू।"

"हाँ मोती।"

"कुछ दिन का महमान हूँ। यदि एक बार गुलनार को देख लेता।"

बालू ने मोती के पिता की ओर देखा, उन्होंने आँखों से ही उत्तर दे दिया कि वह जो कुछ चाहे, मैं सब करने को तैयार हूँ।

"मोती घबराओ मत तुम जो कुछ चाहोगे सो सब हो जायगा। मैं अभी जाकर तार देता हूं और मुझे पूरा भरोसा है कि वह अवश्य आवेगी।"

केवल उस ही के लिए जी रहा हूँ।"

× × + + ×

बालू मोती के दरवाजे पर खड़ा हुआ न जाने क्या सोच रहा था कि सहसा एक तांगा मकान के सामने आकर रुक गया और तांगे वाले ने उससे पूछा, "क्या रामधन मोतीलाल का मकान यही है ?"

"हाँ।"

ताँगे में एक दुबली, पतली, साँवली सी एक लड़की बैठी हुई थी जो किसी भी तरह सुन्दर नहीं कही जा सकती। पास में एक लम्बी डाढ़ी वाले वृद्ध मुस्लिम सज्जन बैठे हुये थे। वे पहिले उतरे और आहिस्ता से उस लड़की को उतारने लगे।

ताँगे से उतरते ही उसने कहा, मैं मोती से मिलना चाहती हूं।

बालू ने उसके कमरे की तरफ उंगली करदी। वह दौड़ी केवल दो कदम और गिर पड़ी! वृद्ध ने उसे उठाना चाहा पर झटका देकर खड़ी हो गई। फिर दौड़ी और फिर गिर पड़ी। पाँच गज के रास्ते में न जाने वह कितनी बार गिरी; मगर किसी की हिम्मत नहीं हुई कि कोई उसके शरीर से हाथ तो लगा ले।

दरवाजे पर पहुंच कर वह चीख उठी, "मोती !!!"

"गु······ल······"

मोती के साथ गुल भी गुल हो गई।

लोग कहते हैं मोती तो मर ही चुका था गुलनार ने भी जहर खा लिया; परन्तु जो समझते हैं प्रेम को और आत्माओं की शक्ति को, तनिक उनसे पूछ कर देखो ???

हरिप्रसाद शर्मा

दयाल

"ओह! इन जागीरदारों के अत्याचारों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। यदि इनकी आजकल की करतूतें संसार के बड़े से बड़े तानाशाहों को भी सुनाई जांय तो वे भी दांतों में उंगली दबा लेंगे और उन्हें मानना पड़ेगा कि हमारी करतूतें इन महान जागीरदारों के सामने कुछ भी नहीं है। अब भी इनमें यह शक्ति है कि मामूली बात पर आदमी को गले तक गड़वाकर, आम जनता के सामने उसके सिर पर जूतियां लगवायंगे, जब तक उसके सिर से खून की धार न बह चले। गांव की किसी भी स्त्री को बेइज्जत करना तो उनके लिये एक साधारण सी बात है। वे गुनाह किसानों को

काठ में दिलवाकर बेतों द्वारा उनके शरीर को खून से लथपथ करवा देना तो उनकी दिनचर्या है ", ये वाक्य किसी वादविवाद के सिलसिले में दयाल बड़े जोश के साथ कह रहा था।

बीच ही में उसकी बात काटकर रमेश बोल उठा, " जो कुछ कहना चाहते हो धिराई से कहो। शान्ति से काम लो। तुम्हारे आरोप आधुनिक समाज में असम्भव हैं। क्या तुम जो कुछ कह रहे हो उसके लिये तुम्हारे पास प्रमाण है ? "

" ओप ! उस सभ्य शिक्षित शहरी समाज के ख्याली पुलावों वाले कठपुतले हैं जो वास्तविकता से कोसों परे हैं। क्या रात दिन समाचार पत्रों में इन बातों का विवरण पढ़ते रहने पर भी आपको विश्वास नहीं होता ? आओ, चलो मेरे साथ गांवों में, तुम्हें नृशंसता के वे बीभत्स दृश्य दिखाऊं कि खुलजायँगे तुम्हारे अन्तरपट के द्वार सदा के लिये। अच्छा तुम्हें यह तो अच्छी तरह मालूम है कि किसानों से मनमाना लगान वसूल किया जाता है। अन्न होता है उसके खेत में सौ मन और कूता जाता है डेढ़ सौ मन। उसही हिसाब से उससे कर वसूल किया जाता है। किस बिना पर ? वे उसके जमीन के मालिक हैं !! जिस समय वे लगान वसूल करने आते हैं उस समय यदि उन्होंने देखा कि ग़रीब किसान ने अपनी मवेशियों के लिये कुछ चुयार भी रखी है तो कटवाकर बन्द करते हुए उसके ऊंट चरवा लेते हैं कि शहर में

यह चारे के लिये काम आयगा। इस मनमाने कर के सिवाय उसको सदा के लिये दुःखी और दलित रखने के लिये और भी अनन्त साधन हैं। ऐसी ऐसी लागें लगाई जाती हैं कि जिनको सुनकर बाहरी लोग कभी विश्वास ही नहीं कर सकते। सुना है तुमने मूंछ फरकाई और लंहगा फिराई की लागों के बारे में। किसानों के मूंछ ऐंठने का मतलब यह है कि वे जागीरदार के रहते हुए अहंकार करते हैं इससे उनसे सालाना फी आदमी एक रुपया वसूल करना चाहिये! इसी तरह स्त्रियाँ लहँगा पहिने जागीरदार की जमीन पर इधर उधर फिरती हैं, जिससे उसकी घास पत्तियों को नुकसान पहुंचता है सो उनसे भी फी स्त्री सालाना एक रुपया वसूल किया जाता है!! ऐसी ऐसी लागें और कर देने के उपरान्त यदि किसान के पास कुछ थोड़ा बहुत अन्न बच भी जाता है तो उसे सूदखोर बनिया अपने ब्याज के रूप में हड़प जाता है। उसे पेट भर रोटी नहीं मिलती। वह अपना सारा जीवन भूख-भूख चिल्ला कर ही बिता देता है।"

"अब यह बतलाओ न कि तुम क्या चाहते हो किसानों के लिये?"

"मैं चाहने वाला होता कौन हूँ? पूछो उन किसानों से कि वे क्या चाहते हैं? वे बतलायेंगे कि वे केवल इतना ही चाहते हैं कि अपनी कमाई को सुख से खा सकें। देखते हो इन शहरों में

ये सारे सुख के साधन और ये लाल इमारतें। ये उनके पीढ़ियों के शोषण का प्रतिबिम्ब है और कर रहे हैं उनमें ताण्डव नृत्य ये जागीरदार और पूंजीपति। क्या इन सुखों की असली झलक वे कभी स्वप्न में भी पा सकते हैं? तुम पूछ रहे हो उनके चाहने वालों के बारे में; यदि उनके चाहने वाले उनकी भलाई का प्रयत्न करते हैं तो उनको द्रोही बताकर अधिकारी इन्हें जड़मूल से नष्ट कर देते हैं!"

"वह गये हजरत विचारधारा में और बनाने लगे बातें, यदि उन किसानों के लिये है कुछ असली दर्द तुम्हारे दिल में, तो जाते क्यों नहीं गाँवों में उनको कुछ समझाने के लिये?"

रमेश की बात दयाल के दिल पर भारी चोट कर गई। वह तिलमिला उठा। बिना कुछ कहे चुपचाप अपने घर की ओर चल दिया। घर पहुंचने के उपरान्त सीधा वह अपने कमरे में चला गया। घण्टों किसी उधेड़बुन में लगा रहा; परन्तु कोई बात स्थिर न कर सका। उसके हृदय में एक भारी उथल-पुथल मची हुई थी। कमरे की कई वस्तुएँ उसने तोड़-मरोड़ डाली। उस समय यदि उसकी शक्ति के भीतर की बात होती तो वह आधुनिक समाज को भी उसही भाँति नष्ट भ्रष्ट कर डालता और मानव समानता के उच्च आदर्श को लेकर एक नये समाज की रचना कर देता। सन्ध्या को उसने भोजन भी नहीं किया। अपने कमरे को बन्दकर वह रातभर बेसुध-सा पड़ा रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब उसने दर्पण में अपना चेहरा देखा तो वह सहम गया। मुँह पर ऐसी झुर्रियाँ पड़ गई थीं कि जैसे वह कई महीनों का बीमार हो। आँखें भीतर धंस गई थीं और उनके चारों ओर एक अजीब स्याही छागई थी। उसके रोंयें खड़े हुए थे और उसका सारा शरीर काँप रहा था। यह था बाहरी रूप: परन्तु उसके हृदय में एक अद्भुत शक्ति का संचार हो गया था। वह कॉलेज गया। वहाँ उसका मन न लगा। उसके साथियों ने उसकी ओर देखा और वे देखते ही रह गये। किसी की हिम्मत न हुई कि उससे कुछ कहे। वह कॉलेज से, वहाँ कभी न जाने का निर्णय कर लौटा।

घर पहुंचकर बैठक से होते हुए जब वह अपने कमरे की ओर जा रहा था, तो उसने देखा कि उसके पिता उसकी ओर घूर घूर कर देख रहे हैं। दयाल की आकृति देख वे सहम गये। दयाल भी रुका, उन्होंने उसे बैठने का इशारा किया और वह बैठ गया।

दयाल के पिता बोले—" मनुष्य का तर्क और सिद्धान्तों के अनुसार किसी विचारधारा को अपनाना तो बुरा नहीं है; परन्तु परिस्थितियाँ देखकर ही वे प्रयोग में लाये जा सकते हैं। तुम अपनी विचारधारा में इतने डूब गये हो कि किसी दूसरी ही दुनियाँ के मनुष्य दिखाई पड़ते हो। तुम्हारा स्वास्थ्य दिन प्रति-दिन इतना गिरता चला जा रहा है कि मुझे तो चिन्ता हो गई है। इस समय तो तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य पढ़ाई होनी चाहिये।"

"इसी लिये तो मैंने पढ़ाई समाप्त करदी है। राजनीति तो एक गोल मोल और बड़ा भ्रमात्मक शब्द है। मैंने अपने को देश सेवा में लगाने का निश्चय कर लिया है।'

"पढ़ाई समाप्त करदी है! क्या कह रहे हो दयाल !! हम पर तो जो कुछ बीतेगा सो तो ईश्वर ही जाने; परन्तु तुम्हारा जीवन सदा के लिये बर्बाद हो जायगा। फिर पछताओगे। ये बड़े बड़े नामधारी लोग तुम जैसों की बलि चढ़ाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। देखा है तुमने, कितने जीवन नष्ट होते हैं और उन्हें कितनी सहानुभूति मिलती है? पहिले जीवन पथ को स्थिर करलो।"

"मैं तो आज ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

दयाल की ओर देखते देखते उसके पिता की आँखें पथरा गईं। वे कुछ बोल न सके और बेहोश हो गये। वह अपने कमरे में गया। केवल एक धोती और कम्बल कन्धे पर रख वापिस लौट आया। बेहोश पिता को देखकर उसके शरीर में कँपकँपी दौड़ गई। फिर ध्यान, वृद्ध और दुखी माता का आया। एक बार तो वह अपने निश्चय से टलता हुआ दिखाई दिया। उसे विश्वास होगया कि देश के लिये, मैं अपने माता पिता का बलिदान कर रहा हूँ। वह एक दो क़दम आगे बढ़ा। उसे अनुभव होने लगा कि उसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ गई हैं। उसने फिरकर देखा।

आत्मा सिहर उठी। हिम्मत कर वह भाग खड़ा हुआ। वह इतना भागा कि उसे स्वयं पता नहीं कि वह कहाँ चला जारहा था।

× × × × ×

कई महिने बीत चुके हैं। टोटले नामी एक छोटे से गाँव में दयाल ने एक हरिजन पाठशाला खोलो है। अब उसे अनुभव होने लगा है कि वास्तविकता और सिद्धान्तों में कितना अन्तर है। गाँवों में घूम फिर कर ग्रामीणों को शिक्षित बनाने, उन्हें स्वास्थ्य और राजनीतिकी शिक्षा देने, छात्र इकट्ठे करने और अपना पेट भरने में जो-जो कठिनाइयाँ उसे भोगनी पड़ी हैं; वह उसकी अन्तरात्मा ही जानती हैं। कई बार तो वह चार कोस भी न चल पाता था कि उसके पैर सूज जाते थे। कई बार अधिक परिश्रम के उपरान्त उसके मुंह और नाक से खून बहने लग जाता था। धीरे धीरे इतना बदल गया कि उसका जीवन एक कठिन तपस्या के रूप में परिवर्तित हो गया। उसके ग्रामीण भेप को देखकर किसी को विश्वास भी नहीं हो सकता था कि किसी समय वह सूट-बूट में रहने वाला एक कॉलिज का विद्यार्थी था।

जब उसने स्कूल खोला था, तब सनातनी अपने लड़कों द्वार पत्थर फिकवाते। वह कभी इधर-उधर होता कि उसके मकान पर मैले का ढेर हो जाता। वह जब कहीं गाँव के बाजार में से निकलता तो सनातनी लड़के उसके पीछे चमार-चमार चिल्लाते तालियाँ बजाते हये चलते।

मनुष्य की आत्म-शक्ति और परिश्रम सब कुछ कर सकता है। दयाल के विरोधी उसके शिष्य बन गये। आस-पास के गाँवों में से सब जाति के लड़के उसके पास पढ़ने आने लगे। उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि बिना उसकी सलाह के कोई भी कार्य न होता। किसानों को भी अनुभव हो गया कि दयाल की सलाह में कितना लाभ है। जागीरदारों का एकाएक अत्याचार करने का साहस न होता। किसानों और मजदूरों के जीवन में एक अद्भुत परिवर्तन होने लगा।

दयाल ने पाठशाला का तृतीय वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाने का निश्चय किया। कई दिनों पहिले तैयारियाँ होने लगीं। दयाल ने नानू नामी एक किसान के लड़के को शहर से कुछ सामान खरीदने के लिये गाड़ी देकर भेजा।

नानू गाड़ी में सामान लदवा ही रहा था कि जागीरदार का एक सिपाही आकर बोला, " सामान पीछे लदवाना। सरकार को बेगार में गाड़ी की जरूरत है। जल्दी चलो। "

"भाई गुरु जी की स्कूल के जलसे का सामान है। इसे पहुँचाना जरूरी है। अभी इसे जल्दी से डालकर सरकार की बेगार में हाजिर होऊंगा।"

सिपाही ने कसकर उसकी कमर में एक लात जमाते हुये कहा, " अबे गुरुजी के बच्चे ! सरकार के हुकुम की अदूली करता है।

सुसर की जूतियों के मारे चमड़ी उधेड़ ली जायगी। ले चल गाड़ी जल्दी से।"

नानू की आँखों में खून उतर आया। अपनी लोहे के पोले वाली लाठी से उसने सिपाही की खोपड़ी खोल दी। नानू भाग खड़ा हुआ। सारे शहर में हल्ला मच गया कि "टोटले" के नानू ने सिपाही को मार दिया। पुलिस घटनास्थल पर पहुंची और लाश उठा ले गई। पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट स ... सिपाहियों के साथ टोटले के लिये रवाना हो गया।

टोटले पहुंचकर नानू ने दयाल को सारी बातें बता दीं। उधर पुलिस आती हुई देखकर सारा गाँव इकट्ठा हो गया। दयाल और नानू को भीड़ ने घेर लिया। लोग चिल्लाने लगे। किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। ज्यों ज्यों पुलिस लोगों को धक्के देने लगी त्यों त्यों भीड़ अधिक बढ़ने लगी।

लोग कहते हैं कि ऊंचे पत्थर पर खड़े हो दयाल भीड़ को हटने का आग्रह कर रहा था, परन्तु पुलिस का कथन था कि वह लोगों को भड़का रहा था। उस धक्का-मुक्की में पुलिस ने अपनी रक्षार्थ गोलियाँ चलाईं और पहिली दो गोलियों का निशाना दयाल का सिर ही बना। कई गाँव वालों के साथ नानू भी काम आया। तहकीकात के बाद कई तो लटके फाँसी पर और कईयों को मिली काले पानी की सजा।

मालूम नहीं कि नानू की गाड़ी को जोतकर कौन जागीरदार की बेगार पर ले गया !!

—हरिप्रसाद शर्मा

पं० मदनमोहन जी शर्मा

शान्ता का अन्त

सन् २६ की बात है। माधो इन्टरमिजियेट में पढ़ता था। वह एक सरल और सीधे स्वभाव का युवक था। उसने अपना जीवन स्वावलम्बन और कठिन परिश्रम द्वारा बनाया था। उस समय उसकी आयु लगभग इक्कीस वर्ष की थी। उसके माता-पिता उसकी शिक्षा पर कुछ व्यय नहीं कर सकते थे। कारण कि वे बहुत गरीब थे। माधो कई जगह ट्यूशन कर, बड़ी कठिनाई से अपना खर्च चलाता था और इस कारण उसके अध्ययन में भी बहुत बाधायें उपस्थित हो जाती थीं। हां, व्यायाम करने के कारण उसका शरीर सुडौल और उसकी गठन अच्छी थी।

उसके विवाह का कहीं निश्चय नहीं हुआ था। उसके माता पिता चाहते थे कि उसका विवाह किसी मामूली पढ़ी लिखी साधारण स्थिति के व्यक्ति की पुत्री के साथ किया जाय। माधो का विचार था कि यदि अंग्रेजी पढ़ी लिखी, फैशन की परी के साथ उसका विवाह हो जाय तो, चैन की वंसी वजेगी। यौवन का मद, छात्र जीवन, कालेज का वातावरण, हृदय में महत्वाकांक्षायें, विलासिता से व्याकुल, जवानी का नशा, सुधार की ओर झुकाव और अपरिपक्व विचारों ने उसके हृदय में एक अद्भुत काल्पनिक संसार की रचना करदी थी। वह देश-सेवा और समाजोन्नति की सहायता में भी पीछे नहीं रहना चाहता था। आधुनिक समाज का वातावरण और जातीयता में उसका विश्वास नहीं था, पर धर्म के अटल सिद्धान्तों का वह दृढ़ अनुयायी था। कई कारणों से उसकी आर्यसमाज पर श्रद्धा हो गई थी, परन्तु वहां पर भी उसे कई बातें बहुत बुरी लगती थीं और वे थीं, दूसरे धर्मों पर आक्षेप, आपस में धार्मिक झगड़े और मन्दिर और मस्जिद के प्रश्न। माधो का कहना था कि शीघ्र ही एक वह समय आयेग , उब कि धर्म काहमारे बाहरी जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। साथ ही साथ उसका यह भी विचार था कि धर्म जीवन-निर्माण का एक सहारा है, जिस के द्वारा हम आत्मा को शुद्ध और श्रेष्ठ बना सकते हैं। राष्ट्र-

धर्म के विचार उसके दिमाग में चक्कर लगा रहे थे। उसके अनुसार राष्ट्र-धर्म साम्प्रदायिकता से परे और सर्वव्यापी होना चाहिये, जिसके द्वारा मनुष्य के बाह्य जीवन में उन्हीं बातों पर विचार किया जायगा, जो कि सारे राष्ट्र की भलाई के लिये हों। यह सब कुछ था उसका स्वरूप, पर कथा।

फतेहगढ़ के टेलीग्राफ आफिस में एक क्लर्क था। उसका नाम तो नानूराम था, परन्तु लोग उसे बाबू के नाम से सम्बोधित किया करते थे। बाबू के यहां लल्लूनामी ब्राह्मण नौकर था। कभी-कभी बाबू के यहाँ लल्लू की स्त्री भी घरू काम काज करने आ जाया करती थी। संयोग वश बाबू की स्त्री बीमार पड़ गई। उसकी सेवा में लल्लू की स्त्री रहने लगी। लगभग छः मास बीमार रह कर बाबू की स्त्री चलबसी। लल्लू के एक तीन वर्ष की कन्या भी थी, जिसका कि नाम शान्ता था। बाबू की स्त्री के देहान्त के उपरान्त, शान्ता और उसकी मां दोनों ही बाबू के घर पर रहने लगीं। इन घटनाओं के ठीक दो वर्ष बाद बाबू का तबादला आगरे हो गया। बाबू ने लल्लू से कहा कि घरू काम-काज करने के लिये शान्ता और उसकी मां को तो मैं अपने साथ ले जाता हूँ, और तुम्हारी नौकरी ठीक ठाक कर तुम्हें भी बुलालूंगा। लल्लू इस प्रस्ताव का आशय भलीभांति

समझ गया। उसके घर में खाने को न था। वह यह भी अच्छी तरह जानता था कि उसकी स्त्री किसी भी तरह न रुकेगी। इस लिये विवश हो उसे बाबू की बात माननी पड़ी।

दुःख, दरिद्रता और कुछ थोड़ी सी निर्बलता, मनुष्य से क्या क्या नहीं करवा लेती। इन सब बातों के साथ यदि यौवन की आँधी में थोड़े से धन का पुट दे दिया जाय तो अधःपतन का कोई ठिकाना नहीं रहता। अपना पराया बन जाता है और पराया अपना। शारीरिक सुख और संभोग के लिये नये नये कौतुक रचे जाते हैं। ऐसे भीषण कार्य होते हैं कि कई निर्दोष आत्माऐं सदा के लिये नष्ट हो जाती हैं। जिनमें पाशविकता की मात्रा अधिक रहती है वे अपनी बुद्धि और बल के प्रयोग से तरह-तरह के आडम्बरों की आड़ में निर्मल आत्माओं को नष्ट करने में लगे रहते हैं इन्हीं परिस्थितियों के बीच शान्ता की मां ने बाबू का घर बसा कर यौवन विक्रय करना प्रारम्भ कर दिया।

आगरे में बाबू मजे उड़ाने लगा। शान्ता की मां की सहायता द्वारा उसे आसपास की स्त्रियाँ भी मिल जातीं। आठ-दस महीनों बाद भूखा मरता हुआ लल्लू कुछ पैसे इकट्ठे कर अपनी स्त्री और लड़की को लेने के लिये आया। गरीब ठोक-पीट कर घर से निकाल दिया गया। बाबू की दूर-दूर तक पहुँच

थी। लल्लू को कोई पास पड़ोस में भी सुनने वाला न था। अदालत के लिये राज्य की फीस, मुंशी की लिखाई, वकील का मेहनताना, अहल्कारों की रिश्वत, चपरासी का इनाम, गवाहों के पैसे और न जाने कितनी बातों की आवश्यकता थी। सो अदालत का तो स्वप्न भी उसके लिये असम्भव था। और तो और पुलिस में भी उसकी सुनाई नहीं हुई। बेचारा गरीब रोता झींखता फतेहगढ़ चला गया। वहां मजदूरी कर अपना जीवन निर्वाह करने लगा।

जैसे-जैसे समय बीतता जाता है लोग पुरानी बातों को भूल कर नये वातावरण को अपना लेते हैं। लल्लू की स्त्री बाबू की विवाहिता समझी जाने लगी और शान्ता उसकी लड़की। वह गाड़ी में बैठ कर पाठशाला जाया करती और हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा पाती। यदि संस्कार और आचरण बुरे हों तो पढ़ाई लिखाई भी कुप्रवृत्तियों को बढ़ाने में सहायक होती है। शान्ता एक चपल लड़की थी। वह अपनी माता और बाबू के सम्बन्ध को अच्छी तरह जानती थी। माता और बाबू की ओर से उसे पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई थी। उसकी माता का बाबू पर खासा प्रभाव होने के कारण उसे मनमाना खर्च करने को मिलता था। शान्ता नित नई धोतियां, ऊंची एड़ी के जूते,

फ्रेन्चजम्पर, अमेरिकन ब्लाउज्स, मनमाने गहने और आधुनिक शृङ्गार की सारी सामग्रियां एकत्रित करने लगी। अब कभी किसी भी जान पहिचान वाले से उसे कोई नई चीज मिल जाती तब वह बहुत ही प्रसन्न होती। जवानी की उभार में शान्ता को एक नये जीवन का अनुभव होने लगा। जितना भी होता उतना वह बन-ठन कर निकलती जिससे कि युवक उसकी ओर आकर्षित हों और इसमें उसे बड़ा आनन्द आता।

शान्ता की मां की यह प्रबल इच्छा थी कि उसकी पुत्री का विवाह यदि हो सके तो किसी पढ़े लिखे ब्राह्मण युवक के साथ ही हो। साथ ही साथ वह यह भी चाहती थी कि लड़का गुलाम बन कर उन्हीं के पास रहे और अपने कुटुम्बियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे। शान्ता सोलह वर्ष की हो गई थी और बाबू ऐसे ही किसी युवक की खोज में लग गया।

संयोग वश बाबू की माधो से भेंट हो गई। थोड़ी बहुत जान पहिचान और सम्पर्क बढ़ा लेने के उपरान्त बाबू ने माधो को शान्ता की तस्वीर दिखलाई और खूब बढ़ा-चढ़ा कर उसकी तारीफ की। माधो मन ही मन सोचने लगा कि उसने मनमानी मुराद पाली। उसने माता पिता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह तो समाज में

क्रान्ति मचाना चाहता था। अपने जीवन को इतना सुखमय बनाना चाहता था कि वह आदर्श जीवन कहा जा सके। शांता के साथ जीवन बिताने का उसने निश्चय कर लिया। इधर बाबू और अब यों कहना चाहिये कि उसकी माँ भी मन ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि अच्छा उल्लू फंसा।

माधो को सगाई पक्की करदी गई और विवाह की तिथि निश्चित हो गई। माधो देहली रहता था और बाबू आगरे परन्तु विवाह प्रयाग में करना तय किया गया। इसका कारण था सामाजिक बाधायें और लल्लू की ओर से गड़बड़ी का डर। माधो के माता-पिता रोते-झींखते ही रह गये और उसका विवाह हो गया।

विवाह के उपरान्त माधो अगाध प्रेम और अनुपम सुख के कल्पना-चित्र खींचने लगा। शान्ता के पास बड़े—बड़े प्रेम-पत्र भेजने लगा; परन्तु उनका उसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। शान्ता की मां और बाबू कभी उन पत्रों को शान्ता के पास पहुँचने ही नहीं देते। शान्ता की माँ सदा इस बात के प्रयत्न में रहती कि माधो देहली छोड़कर आगरे रहे और वहीं अपना जीवन व्यतीत करे। माधो चाहे कितना ही सुधारक था, परन्तु वह अपने माता-पिता को छोड़ने को तैयार न था। साथ ही साथ उसे अपनी पढ़ाई का भी ध्यान था। वह कई बार

आगरे गया; परन्तु उस गरीब को इस बात के लिये तंग किया जाता यह जेवर बनवाओ वह जेवर बनवाओ; बनारसी साड़ी लाओ, जरी के कपड़े बनवाओ और भी कई प्रकार की मांगें की जातीं। साथ ही साथ यह भी आश्चर्य में डाल देने वाली बात थी कि उसे कभी शान्ता से बात करने का मौका ही नहीं दिया जाता।

किसी न किसी तरह माधो का गौना हुआ। शान्ता के साथ एक नौकरानी भी भेजी गई। नौकरानी घर का कोई काम-काज न करती, पर एक बात अवश्य थी और वह यह कि नौकरानी सदा इस बात के प्रयत्न में रहती कि माधो का जीवन सुख मय न बन सके। एक महीना भी पूरा न होने पाया था कि बाबू शान्ता को लिवाने आ गया। जब वह अपनी मां के पास आ रही थी तब वह किसी भी प्रकार से असंतुष्ट न थी। घर पहुँचते ही उसकी मां और बाबू ने माधो पर तथ्यहीन और भयङ्कर दोष लगाकर उसे घृणित आदमी बतलाया, जिसके फल स्वरूप शान्ता का हृदय फिर गया और उसकी माँ शान्ता का गर्भ गिराने में सफली भूत हुई।

शान्ता को अपने घर लाने के माधो ने कई प्रयत्न किये पर वह उसे अपने घर न ला सका। उसका सुख स्वप्न टूट गया।

गृह जीवन सदा के लिये नष्ट हो गया। अपने लड़के को सूखता हुआ देखकर उसके माता पिता भी चिन्तित रहने लगे।

इधर शान्ता का जीवन बिलकुल बदल गया। वह देश सेवकों और समाज सुधारकों की आड़ में शिकार खेलने वाले लोगों से सदा घिरी रहती। उसने एक मिशन स्कूल में नौकरी भी करली थी। रंगे सियारों को अच्छा मौका मिल गया और धीरे धीरे उसका पतन होने लगा। उसकी मां की बीमारी के कारण उसे नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

उस समय माधो एल० एल० बी० में पढ़ रहा था। जब उसे अपनी सास की बीमारी के बारे में मालूम हुआ तो वह आगरे आया। बाबू के मकान पर उन रंगे सियारों का उसने पूरा साम्राज्य देखा। इनमें एक ठग माधो को ताजगंज की सैर कराने ले गया। जब वे एक मीनार पर चढ़ रहे थे तो उस ठग ने माधो के पैरों में एक ऐसी टाँग लड़ाई कि वह गिरकर सदा के लिये इस असार संसार से चलबसा होता, परन्तु संयोगवश उसने एक कटहरे को पकड़ लिया और जीता जागता घर लौट आया।

कुछ दिनों उपरान्त शान्ता की मां की मृत्यु हो गई। शान्ता स्वतंत्र हो गई। अब उसके कार्यों में रुकावट डालने वाला कोई न बचा। उसने कुछ यारों के बहकाने पर …… से एक

ऊंचे से ऊंचे नेता को जिसे कि महापुरुष कहना अत्युक्ति न होगा, एक पत्र लिखा जिसमें यह दर्शित किया गया कि खादी के कपड़े पहिन देश भक्ति और सुधार की आड़ में माधो अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ तरह तरह के कुकर्म कर रहा है। उस चिट्ठी के आधार उन महापुरुष ने अपने पत्र में माधो की खूब लानत-मलामत की। शान्ता को यह उपदेश भी देदिया गया कि वह माधो को छोड़कर, किसी भी पुरुष के साथ अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सकती है। अपनी निजी राय के अनुसार एक ठग को ही उन्होंने बतलाया कि वही शान्ता के लिये उपयुक्त पति होगा।

उस लेख को पढ़कर माधो की आत्मा सिहर उठी। वह सोचने लगा कि क्या ये ही महापुरुष हैं जो विना जाने और बिना पूरी छान-बीन किये दूसरों का जीवन नष्ट कर डालते हैं। मेरे इस जीवन चित्र को पढ़कर कितने युवकों और युवतियों पर क्या क्या असर पड़ा होगा। परन्तु वे तो हैं महापुरुष। उनकी ओर उंगली उठाने की किसकी हिम्मत है। उंगली, उठाने के पहिले ही काट दी जाती है।

माधो ने हिम्मत कर अन्त में उन महापुरुष को लिख ही तो दिया। पूरी छान-बीन हुई। किसी भी तरह माधो दोषी न ठहराया जा सका। महपुरुष ने माधो से मांफी मांग ली। माधो

के लिये इससे महान और कौनसी बात हो सकती थी, परन्तु शान्ता और माधो के जीवन को तो उन महापुरुष की कलम और उनके चेलों ने सदा के लिये नष्ट कर ही दिया।

शांता किसी संक्रामक रोग से पीड़ित अपनी अन्तिम सांसें गिन रही है। उस समय उनके पास कोई पानी पिलाने वाला भी नहीं है। उन ठगों ने उसका धन और सब कुछ लूट लेने के उपरान्त आना बन्द कर दिया। उस समय उसका गत-जीवन उसकी आँखों के सामने आरहा है और वह सोच रही है, "क्या यही है देशोद्धार।"

—मदनमोहन शर्मा

———

धोखे का जवाब

संसार एक परीक्षा-स्थल है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी भांति अपने जीवन में सफलता पाने का प्रयत्न करता है। कोई ज्ञान के आधार पर, कोई बुद्धि के बल पर तो कोई कार्य कुशलता और उद्योग द्वारा अपना भाग्य बनाता है। यह संभव नहीं कि संसार के सब ही व्यक्ति जीवन यात्रा में सफल होकर अपने ध्येय तक पहुँच सकें। इसका कारण बहुधा व्यक्ति की कमजोरियां तथा अधोरतायें होती हैं। कई लोग अपने भले के लिये झूठा प्रदर्शन कर संसार को धोखे में डालने का प्रयत्न करते हैं परन्तु प्रकृति का यह नियम है कि जो जैसा बोवेगा वैसा ही वह काटेगा। यदि आप चाहते हैं कि दूसरे भी आपके साथ

ठीक ठीक शुद्ध हृदय से व्यवहार करें, आपको किसी प्रकार का धोखा न देवें तो पहिले स्वयं आपको ही चाहिये कि दूसरों के साथ सद्व्यवहार करें और किसी को किसी प्रकार का धोखा न दें।

मथुरा के पास रामगांव में गणेश और रमेश नाम के दो भाई रहते थे। गणेश लगभग पैंतीस वर्ष का था। उसका कद लम्बा, शरीर मोटा और बाल अधकचरे होने के कारण वह चालीस के करीब दिखाई देता था। दैवयोग से उसकी स्त्री का स्वर्गवास होगया। गणेश ने अपना दूसरा विवाह करना चाहा, परन्तु सारे प्रयत्न निष्फल रहे। तरह तरह की बातें सुन लड़की वाले उसे देखने आते, और उसकी सूरत देखते ही चुपचाप चले जाते।

अन्त में गणेश को एक चाल सूझी। उसने अपने भाई रमेश से यह तय कर लिया कि सगाई तो रमेश की कर ली जाय, क्यों कि वह २५ वर्ष का एक सुन्दर युवक था और विवाह करने के लिये गणेश पहुँच जाय। इस बार एक वृद्ध सज्जन किसी दूर के गांव से रमेश की सगाई करने आये। बातचीत पक्की करली गई और टीका हो गया। गणेश अपनी चाल पर फूला न समाता था और मन ही मन सोचा करता था कि पांचों उंगलियां घी में हैं।

निश्चित समय पर रमेश के स्थान पर गणेश दूल्हा बना। धूमधाम से बारात लड़की वाले के स्थान पर पहुँची। वर को देख कर लड़की वाले के सारे सम्बन्धी आपस में कानाफूसी करने लगे कि कहीं लड़की के पिता ने कन्या विक्रय तो नहीं किया है, परन्तु वास्तव में मामला कुछ और ही था।

लड़की का पिता सारी चाल समझ गया। एकाएक कोई अनोखी चाल उसके दिमाग में चक्कर लगा गई। उसने सोचा कि नीच के साथ तो नीचता का ही वर्ताव करना चाहिये। वह था सुधारक विचारों का, परन्तु समाज का सामना करने की उसमें हिम्मत न थी। वह सोचने लगा कि आगे जो कुछ भुगतेगी सो भर भुगतूँगा, पर गणेश को तो ऐसा मजा चखाऊंगा कि जन्म भर याद रखे।

लड़की की एक विधवा जवान चाची थी। परिस्थितियों को देखकर वह यह भली भांति जानती थी कि बिना किसी जीवन-साथी के उसका समाज में निभना कठिन हो आयगा। समझा-बुझाकर वह इस बात पर राजी कर ली गई कि दुलहिन के स्थान पर मण्डप में भाँवर लेने के लिये वह बैठजाय। लड़की कोठे में छिपा दी गई। विधवा चाची की तरफ कौन ध्यान देने वाला था, क्योंकि उसका किसी भी कार्य में शामिल होना कुशगुन माना जाता। इसलिये उसकी ओर किसी का ध्यान ही न गया।

लोग समझ रहे थे, कि लड़की भांवरों में बैठा दी गई है। विवाह भली प्रकार समाप्त हो गया।

विवाह के दूसरे दिन लड़की का पिता गांव के कुछ प्रतिष्ठित आदमियों को साथ ले गणेश के पास पहुँचा और बोला कि तुमने मुझे कितना बड़ा धोखा दिया। सगाई में रमेश की कर आया था, न कि तुम्हारी। तुम दुलहा बन कर बारात ले आये। यह मेरी भलमनसाहत है कि तुम्हारा विवाह कर दिया। आगे मुझे इस बात का डर है कि तुम अपनी स्त्री के साथ भी धोखा करो। मैं तब तक लड़की विदा नहीं करूंगा, जब तक एक बात पूरी न हो जाय। तुम्हें बीस हजार रुपयों की जायदाद की रजिस्ट्री अपनी स्त्री के नाम करवानी होगी।

एक दो पंच जो कि लड़की के पिता के परम मित्र थे उनसे उसने सारी बातें कहदी थीं और उन्हीं की सलाह से सारा काम किया गया था। कुछ वाद-विवाद के उपरान्त सब लोगों की यही राय रही कि गणेश को रजिस्ट्री करवानी ही पड़ेगी। ऐसे भी राय देने वाले कई थे, जिनका, कहना था कि गणेश की सारी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी यही है तो फिर रजिस्ट्री करवाने की क्या आवश्यकता है; परन्तु लड़की का पिता तो अपनी बात पर डटा रहा।

गणेश मन ही मन राजी हो रहा था कि जीत तो मेरी ही

रही और मेरी युक्ति चल निकली। रजिस्ट्री तो एक भोंदूपने की-सी बात है। उसमें मेरी हानि ही कौनसी है। जितनी भी जल्दी हो सका, उतनी जल्दी, अपने पास से कुछ ले देकर उसने रजिस्ट्री करवादी। रजिस्ट्री विधवा के नाम से हुई; परन्तु उस समय गणेश तो अपनी धुन में इतना मस्त था कि किसी बात की ओर उसका ध्यान ही न गया। उसे तो नई दुलहिन से मिलने की प्रबल उत्कण्ठा थी।

घर पहुँचने पर गणेश को वास्तविकता का ज्ञान हुआ; परन्तु "पछताये क्या होता है, जब चिड़ियां चुग गई खेत" वाली कहावत चरितार्थ हो गई। चुप रहना ही उसने उचित समझा। उस विधवा के साथ गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगा। एकान्त में जब कभी वह अपने जीवन पर विचार करता, तो यह बात बिजली की भांति उसके हृदय में दौड़ जाती, कि मैंने दूसरों को धोखा देने का प्रयत्न किया, जिसके फल स्वरूप मैं स्वयं ही उसका शिकार बन गया।

ऐसे लोगों में एक बात होती है कि ठोकरें खाने पर भी उन्हें अक्ल नहीं आती। वे ढोंग रचना खूब अच्छी तरह जानते हैं। गणेश इस बात के भ्रम में था कि उसके गांव के लोग असली बात नहीं जानते, परन्तु बच्चा-बच्चा सारी कहानी से परिचित था।

छेड़ने के लिये लोग उसके सामने विधवा विवाह का प्रश्न उठाते और वह आग बबूला हो जाता। विधवा विवाह के विरुद्ध विष उगलने लगता और शास्त्रों का ज्ञान न होते हुये भी उनकी शरण लेता। तरह-तरह की दलीलें पेश करता। लोग सोचते कि कितना ठग है और व्यंग में कह देते कि तुमने यह अच्छा ही किया कि विधवा विवाह नहीं किया।

मदनमोहन शर्मा

मेरी कहानी

मेरा नाम है रामधन। कहानी है पुरानी, संभव है आप उसे जानते हों, पर सुनिये, जब मैंने देखा समय में परिवर्तन, देश में तीव्र गति से फैलती हुई स्वतन्त्रता की लहर, रियासतों में जागृति की भावना, आगे बढ़ने के लिये अतुलनीय प्रयत्न, असंख्य बलिदान, युवकों की भावुकता, और युवतियों का उत्साह, तो मेरे भी हृदय में उथल-पुथल मच गई। जाग उठा वह सुप्त महान आदर्श कि देश के लिये मैं भी कुछ करूं। जर्जरित समाज में नया रक्त भरने में सहायक होऊं और अनन्त पथ की बलिवेदी पर अपने को चढ़ा कर जीवन को सदा के लिये सार्थक बनाऊं।

श्री० फूलचन्द जी वर्मा

× × × ×

गर्मियों की छुट्टी थी । मैं देहात में भ्रमण करने के लिये निकल पड़ा । सब जगह अकाल ने प्रचंड रूप धारण कर रखा था । गर्म वायु की लपटें धधकती हुई अग्नि के समान थीं, जो भूखी आत्माओं को भस्म करने में अत्यन्त ही सहायक थीं । जिस गांव में जाता वहीं देखता कि आधे से अधिक घर खाली पड़े हुये थे । उन घरों के निवासियों में से कई तो मर चुके थे और बाकी भूखों मरते न जाने कहां गायब हो गये थे । जब मनुष्यों को ही खाने को नहीं मिलता तो पशुओं को कौन पूछता ? गांवों की गलियों में मर कर वे सड़ रहे थे । कुत्ते, गिद्ध और कौवे उन्हें नोच-नोच कर खा रहे थे । उन पशु-पक्षियों को हटा-कर चमार भी अपना पेट भरने के लिये कुछ थोड़ा बहुत मांस काट ले जाते थे । दुर्गन्धि के कारण मुझ जैसे आदमी के लिये तो गांव में घुसना भी असम्भव हो जाता था, परन्तु मैं तो स्वयं सब कुछ अपनी आंखों देखना चाहता था । इस गन्दगी के कारण गांवों में तरह-तरह की संक्रामक बिमारियाँ फैल रही थी और उन दुःखी आत्माओं को भूख की यंत्रणा से बचाने और दूसरे लोक में ले जाने में बहुत ही सहायक थीं ।

इन सब बातों पर थे अधिकारियों के अत्याचार और जागीरदारों की रक्त पिपासा । वे इन गरीब किसानों को मांस-

रिक सम्पत्ति से मुक्त कर ऐसा बना देते कि परलोक यात्रा के लिये उनके पास कोई बोझ न रह जाता और इस पर भी यदि वे आनाकानी करते तो दो चार धक्के देकर उन्हें उस ओर अग्रसर कर देते। मैंने जब यह सब कुछ देखा तो सोचा कि इसी धन से हम शहरों में रंग-रेलियां करते हैं। हृदय में केवल एकमात्र भाव उठा कि क्या यही है जीवन का उद्देश्य?

× × × ×

जब शहर लौटा तो देखा कि जनता स्वयं अपने राज्य का कारोबार चला सके, इस उद्देश्य को लेकर सत्याग्रह छिड़ा हुआ है। सोचा कि सब से अधिक संख्या किसानों की ही है और यदि सारा कारोबार उनके हाथों में आ जायगा तो अपनी भलाई का रास्ता वे आप ही ढूंढ़ निकालेंगे। सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय कर लिया। सारे सांसारिक सुख मेरे लिये उपस्थित थे। मेरा कुटुम्ब प्रतिष्ठित और सम्पत्तिशाली है। पिता और दोनों बड़े भाई राज्य में ऊंचे अधिकारी हैं। विवाह भी एक अच्छे ही कुल में हुआ है। सत्याग्रह के कुछ ही दिनों पहिले गौना कर अपनी स्त्री को लाया था। कालेज में अच्छे विद्यार्थियों में समझा जाता था। घर में सब का लाड़ला था। नौकर, चाकर, और ड्राईवर सदैव मेरा हुकुम बजाने के लिये तत्पर रहते थे। जब घरवालों को मेरे निश्चय का पता

लगा तो मानों उन पर वज्रपात हुआ। मेरे कर्तव्यपथ से डिगाने के लिये न जाने वे कौन-कौन सी युक्तियां काम में लाये परन्तु उनके सारे प्रयत्न निष्फल रहे।

× + + +

जिस दिन लाठियां चली रही थीं, मेरी भी कमर और छाती पर कई लाठियां पड़ी। मुंह से रक्त बहने लगा। मैं सत्याग्रहियों के कैम्प में मरणासन्न अवस्था में पड़ा हुआ था, पर निजी जनों में से कोई भी मेरे पास न आया। यह थी उनकी गुलामी की परीक्षा और उनके स्वार्थ का नग्न प्रदर्शन। हृदय में न जाने कौन कौन से भाव उठे और विलीन हो गये।

× × × ×

मैं लाठियां खाने के कारण काफी नाम पा चुका था। जिस दिन मैं जुलूस लेजा रहा था अनन्त भीड़ थी। जनता में अद्भुत खलबली मची हुई थी। चोटों के कारण चलने में पीड़ा होती थी, परन्तु सिर उठाये मैं चला जा रहा था। एकाएक सारी चहल-पहल बन्द हो गई। भीड़ को चीरते हुये मेरे श्वसुर, जिन्हें कि पुलिस बड़े आदर के साथ ला रही थी, मेरे सामने आ खड़े हुये। अपने सिर की पगड़ी उतार कर उन्होंने मेरे चरणों पर रखदी और कहा कि लौट चलो, हमारी सब की इज्जत तुम्हारे हाथों में है। मेरी आंखों में खून उतर आया

छाती फूल कर आध इंच ऊपर उठ गई। मैंने उस लाल पगड़ी को एक ऐसी ठोकर लगाई कि सारी सड़क पर वह फैल गई। मुझे चक्कर आ गया और डामर की सड़क पर वह पगड़ी मुझे खून की धाराओं के रूप में दिखाई देने लगी।

× × + +

और सब बातों के सिवाय जेल में मुझे एक नया अनुभव हुआ। वहाँ पर भी राजनैतिक व्यापारियों ने अपनी दूकानदारी जमा रक्खी थी। अपने गुर्गों द्वारा देशभक्तों के जीवन को उन्होंने दुखःमय बना दिया था। भावुक युवक कभी कभी तो बहकाव में आकर लड़ पड़ते, परन्तु धीरे-धीरे वे सारी चालाकियों को समझ गये। आपस में शिक्षा का आदान-प्रदान कर वे समय बिताने लगे। वे सोचते कि हमने बलिदान किया है। बाहर निकलने पर हमारा बहुमत होगा। संस्थायें हमारे हाथों में होंगी। हम एक महान जागृति उत्पन्न कर देश को स्वतंत्र कर देंगे। उस चार दीवारी के भीतर ये सब उनके निरे सुख-स्वप्न थे। वे वास्तविकता से कोसों परे थे।

+ + ×

बाहर आने पर ये युवक कुछ दिन तो छाती फुलाये फिरा करते थे कि हम जो चाहेंगे वही होगा, धीरे-धीरे परन्तु उन्हें मालूम हुआ कि जिन्होंने उनकी पीठ ठोककर बलिके लिये आगे बढ़ाया

था, वे उनसे बात तक करने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि उनके पास समय नहीं है !! !राजनैतिक व्यापारी आम सभाओं में जब व्याख्यान देते हैं कि हमें कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, तो ये देशभक्त भावुक युवक अपने को जा समर्पण करते, परन्तु उत्तर मिलता कि तुम्हारे जैसे तो पहिले ही से हमारे पास बहुत से आदमी हैं। हमें आवश्यकता है अनुभवी या पैसे वाले या नाम-धारी लोगों की। तुम हमारी स्कीम में फिट नहीं हो सकते। इन व्यापारियों को आवश्यकता थी आराम जुलूस, और अखबारों में विज्ञापन बाजी के लिये धन की, और ऐसे गुर्गों की जो उनके नाम का प्रचार करें। वे स्वतंत्रता के उपासक, देशभक्त युवक उनकी तानाशाही में कब रह सकते थे और क्या काम आ- सकते थे ? पुराने मित्र तो पहिले ही उन युवकों के शत्रु बन चुके थे। उन्हें सारा संसार शून्य दिखाई देने लगा। जिनकी आत्मायें निर्बल थीं और जिन्हें कोई राह दिखाने वाला न था उनमें से कुछ तो इन राजनैतिक व्यापारियों के शत्रुओं के दल में जा मिले और कुछ का इतना पतन हुआ कि गुलाम भी उनकी ओर उंगली उठाकर कहने लगे यही है देश-सेवा का परिणाम !

\+ × +

मेरी भी स्थिति भयङ्कर हो गई। पुराने मित्र मुझे देखकर मुंह मोड़ लेते। 'यह बात नहीं थी कि उनकी आंखों में, मैं गिर

गया था, परन्तु उन्हें भय था कि कहीं उनकी गुलामी में बाधा न पहुँचे। मुझसे मिलने में उन्हें डर लगता था। शहर में मेरे लिये घूमना-फिरना बन्द हो गया। अपने घर में तो मैं किसी भी तरह नहीं रह सकता था। जो कार्य करना चाहता था उसके लिये दृढ़ निश्चय कर मैं घर से निकल पड़ा।

+ + +

एक छोटे से गांव में झोंपड़ी बना कर मैं रहने लगा। उस समय मेरी स्त्री भी मेरे पास आ गई थी। जिन कठिनाईयों का मैंने सामना किया वे मेरे जीवन की चिर-स्मृति रहेंगी। धीरे-धीरे मैंने अपना ढांचा जमा लिया। आसपास के गांवों के सवासौ के करीब लड़के हमारे पास पढ़ने आने लगे। मैं और मेरी स्त्री उन्हें खूब जी लगा कर पढ़ाते। गांव वालों की हम पर श्रद्धा हो गई। उन्हीं के उत्पन्न किये हुये अन्न से हमारा उदर-पोषण होने लगा। राज्य के अधिकारियों और जागीरदारों के अत्याचार कम हो गये। किसानों को हम संसार में होने वाली घटनाओं से परिचित कराने का प्रयत्न करते। उन्हें संगठन, विज्ञान, राजनैतिक-अधिकार आदि बातों से परिचित करा उनका समय व्यर्थ नष्ट न होने देते। कभी किसी गांव से यदि दोपहर को भी गड़बड़ी की खबर मिलती तो उस ही समय मैं पैदल उस ओर चल पड़ता। इन सब बातों ने हमें किसानों

से तादात्म्य दिया। उनका आत्मसमर्पण भी अद्भुत था। जरा से इशारे पर भविष्य की चिन्ता न कर सैकड़ों की संख्या में वे आ उपस्थित होते। आन्तरिक सुख और उनका प्रेम केवल

× × ×

ये दो ही बातें हमें उनकी सेवा के फल स्वरूप मिलीं।

रात्री के नौ बजे होंगे। झोंपड़े के सामने चबूतरे पर मैं अपनी चारपाई पर लेटा हुआ था। दूर के गांवों के कई लड़के हमारे ही पास रहा करते थे। कुछ तो गणित के प्रश्न हल करने में लगे हुये थे और कुछ को मेरी स्त्री गेरीबाल्डी की कहानी पढ़कर सुना रही थी। इतने में बगल की झोंपड़ी में से एक बूढ़ा किसान गाने लगा, "निर्धन के धन राम।"

मेरे हृदय में एक अद्भुत गुदगुदी हुई और मैं सुख स्वप्न लेने लगा।

—फूलचन्द शर्मा